रूसी कहानी

मिखाइल प्रीश्वीन

जिन्सेंग-जीवन की जड़

जीवन की जड़ (रूसी उपन्यास) : मिख़ाईल प्रीश्विन

जिन्सेंग - जीवन की जड़ (रूसी उपन्यास) : मिख़ाईल प्रीश्विन

Ginseng/Jen Sheng - The Root of Life (Russian Novel in Hindi) : Mikhail Prishvin

1

तृतीय कल्प के जन्तुओं ने अपनी जन्मभूमि को नहीं त्यागा जब वह हिमावृत्त हो गयी, और अगर वह एकदम हो गयी होती तो बाघ बर्फ़ पर अपने चिह्नों को देखकर कितना भयभीत हुआ होता! बस इसी तरह भयंकर बाघ भी और दुनिया का एक सुन्दरतम, कोमलतम और चारुतापूर्ण जीव - चीतल मृग भी और अद्भुत वनस्पतियों - वृक्ष सदृश पर्णांग, एरालिया और जीवन की जड़ - सुप्रसिद्ध जिन्सेंग भी अपनी जन्मभूमि छोड़कर नहीं गये। इस सन्दर्भ में पृथ्वी पर मानव की शक्ति के बारे में सोचे बिना कैसे रहा जा सकता है जब अगर उपोष्ण प्रदेश के हिमावृत्त

होने पर भी वहाँ से न भागे जन्तु, 1904 में मंचूरिया में मानव की तोपों की गरज से भाग खड़े हुए। कहते हैं कि इसके बाद वहाँ से बहुत दूर, उत्तर में, याकूतिया के टैगा वनों में बाघ दिखायी देने लगे। और मैं भी जन्तुओं की तरह यह न सह सका। हमारी खंदक की ओर आते घातक गोले के चीत्कार को मैंने सुना था और वह आज तक मुझे ख़ूब अच्छी तरह याद है और उसके बाद - कुछ नहीं। लोग भी बस कभी-कभी ऐसे ही मरते हैं: कुछ नहीं! पता नहीं कितना समय बीता था, मेरे इर्द-गिर्द सब बदल गया: कोई ज़िन्दा न बचा, न हमारे लोग थे, न दुश्मन के, रणभूमि में चारों ओर मृत लोग और घोड़े पड़े थे, गोलों और कारतूसों के खोल, तम्बाकू के खाली पैकट बिखरे थे और ज़मीन चेचक के दागों की तरह, ठीक वैसे ही गड्ढों से ढकी थी जैसे मेरे आसपास थे। कुछ सोचकर मैंने, जो सिर्फ एक रिवाल्वर से लैस कीमियाई सफरमैना था, एक अच्छी-सी रायफल चुनी और अपने किट बैग में ज़्यादा से ज़्यादा कारतूस भर लिये। मैं अपनी टुकड़ी को ढूँढ़ने नहीं गया। मैं केमिस्ट्री का सबसे अध्यावसायी छात्र था, मुझे वारण्ट अफ़सर बना दिया, मैं बहुत देर तक यह सहता रहा और जब लड़ाई में कोई तुक नहीं रही मैं बस चला गया सब छोड़-छाड़कर अपनी नाक की सीध में। बचपन से ही अज्ञात प्रकृति मुझे अपनी ओर खींचती थी। और अब मैं मानो किसी स्वर्ग में पहुँच गया जिसे मेरी ही रुचि के अनुसार बनाया गया हो। अपने देश में मैंने कहीं भी प्रकृति का ऐसा विस्तार न देखा था जैसा मंचूरिया में: वनाच्छादित पर्वत, इतनी ऊँची

घासवाली घाटियाँ कि घुड़सवार ही उसमें पूरा का पूरा छिप जाये, अलावों जैसे बड़े-बड़े लाल फूल, चिड़ियों जैसी तितलियाँ, फूलों से पटी नदियाँ। भला ऐसा मौका फिर कभी मिल सकता है अछूती प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द विचरने का! यहाँ से कुछ दूर रूस की सीमा थी जहाँ ठीक ऐसी ही प्रकृति थी। मैं उस ओर चल पड़ा और शीघ्र ही मुझे पहाड़ी के ढलान पर नाले की बालू पर बकरियों के खुरों के ऊपर जाते असंख्य चिह्न दिखायी पड़े - ये घूमन्तू[1] बकरियाँ और कस्तूरीमृग उत्तर की ओर हमारे रूस को जा रहे थे। बहुत दिनों तक मै उनके पास न पहुँच सका पर एक बार, पहाड़ी के उस पार, जहाँ माइखे नदी का उद्गम है मुझे पहाड़ी दर्रे में ऊँचाई पर उसकी एक ढाल पर एक बकरा दिखायी दिया - वह एक शिलाखण्ड पर खड़ा था और जैसा कि मैं समझा, उसे मेरी भनक पड़ गयी और वह मुझे अपने ही ढंग से कोसने लगा। उस समय तक मेरे पास जितने भी रस्क थे वे समाप्त हो चुके थे और दो दिन से मैं गोल-गोल सफ़ेद खुमियाँ खाकर गुजारा कर रहा था जो पककर पैरों तले फूट जाती हैं। ये खुमियाँ खाने में ठीक ही थीं और उनसे लगभग वैसा ही नशा होता जैसा अंगूरी से। मेरी भुखमरी में यह बकरा मेरे बड़े काम का था और मैं विशेष ध्यान के साथ उसका निशाना साधने लगा। जब रायफल की मक्खी बकरे को टटोल रही थी मुझे उससे कुछ नीचे बलूत की छाया में पसरा विशाल सुअर दिखायी दे गया। बकरा मुझे नहीं उसी को गालियाँ दे रहा था। मैंने रायफल की नाल सुअर की ओर मोड़ दी और गोली

चलने के बाद न जाने कहाँ से जंगली सुअरों का पूरा का पूरा झुण्ड प्रकट हुआ और भाग पड़ा, और कटक पर मुझे न दिखायी देती सारी घूमन्तू बकरियाँ चौंककर माइखे के सहारे-सहारे रूसी सीमा की ओर तेजी से दौड़ पड़ीं। उस ओर टीलों पर धब्बों जैसी छोटी-छोटी जोतों के पास दो चीनी झोंपड़ियाँ - फ़ांज़ें नज़र आ रही थीं। चीनियों ने खुशी-खुशी मेरा सुअर ले लिया, मुझे खाना खिलाया और मांस के बदले मुझे चावल, चौलाई और खाने-पीने का कुछ और सामान दिया। जब मुझे पता चल गया कि टैगा प्रदेश में कारतूस मुद्रा का ही काम देते हैं मैं ख़ूब मजे से रहने लगा, काफ़ी जल्दी मैंने रूसी सीमा को पार किया, किसी पवर्त श्रृंखला पर चढ़ा और मुझे अपने सामने नीला महासागर दिखायी पड़ा। जी हाँ, बस इसी के लिए, ऊँचाई से नीले महासागर को देखने के लिए उन अनेक कठिन रातों का कोई दुख नहीं, जब किसी जन्तु की तरह चौकन्ना होकर सोना पड़ा, और वह सब खाने का भी जो कुछ बन्दूक की गोली ने दिलवाया। बड़ी देर तक मैं ऊँचाई से इस दृश्य का आनन्द लेता रहा, मैं अपने को इस दुनिया में सचमुच ही सबसे सौभाग्यशाली व्यक्ति समझ रहा था। फिर मुँह में दो कौर डालकर मैं पथरीली चोटी से देवदार के वन में उतरने लगा और देवदार के वन से धीरे-धीरे मंचूरिया की तटवर्ती प्रकृति के चौड़ी-चौड़ी पत्तियों वाले वन में पहुँच गया। खासकर मखमली पेड़ मुझे फौरन भा गया अपनी सादगी की वजह से, देखने में वह लगभग हमारे एश वृक्ष जैसा ही लगता है पर यह एश नहीं, मखमल है - जो

कहलाता है कार्क वृक्ष। इनमें से एक पेड़ की सलेटी छाल पर टूटी-फूटी रूसी में समय के कारण काले पड़ चुके ये शब्द खुदे हुए थे: "तुम्हारा चलना मना है, गला चिक हो जायेगा!" करता क्या? एक बार फिर से ये शब्द पढ़कर मैं कुछ देर सोच में डूबा रहा और टैगा की संहिता का पालन करते हुए उल्टा मुड़ा कोई दूसरी पगडण्डी खोजने के लिए। इस बीच पेड़ के पीछे से छिपकर एक आदमी मुझ पर निगाह रखे हुए था और जब मैं वर्जना पढ़कर उल्टा मुड़ा, वह समझ गया कि मैं खतरनाक आदमी नहीं हूँ। पेड़ की ओट से निकलकर वह सिर हिलाने लगा कि मैं उससे डरूँ नहीं।

1. घूमन्तू - पक्षियों की तरह जन्तु भी प्रव्राजी होते हैं, विशेषकर सुदूर पूर्व में यह स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है। - लेखक

"चलो, चलो!" उसने मुझसे कहा।

उसने बड़ी मुश्किल से टूटी-फूटी रूसी में मुझे बताया। तीन साल पहले चीनी शिकारियों ने इस घाटी पर कब्जा कर लिया था: यहाँ वे बारहसिंगों और चीतलों का शिकार करते थे और यह उन्होंने डराने के लिए लिख दिया ताकि दूसरे यहाँ आकर जन्तुओं को न छेड़ें।

"चलो-चलो, घूमो-घूमो!" चीनी मुस्कुराकर बोला, "कुछ नहीं होगा।"

उसकी इसी मुस्कान ने मुझे कैद कर लिया और साथ ही कुछ सकते में भी डाल दिया। शुरु में चीनी मुझे बूढ़ा ही नहीं बल्कि

बेहद जर्जर लगा। उसका चेहरा छोटी-छोटी झुखरयों से पटा था, चमड़ी का रंग मिट्टी जैसा धूसर था, उसकी मुश्किल से दिखायी देती आँखें इस पुराने पेड़ की छाल जैसी सिकुड़ी चमड़ी में छिपी थी। पर जब वह मुस्कराया तो उसकी सुन्दर काली-काली मानवीय आँखें चमक उठीं। चमड़ी तन गयी, होंठ खिल उठे, श्वेत दंतावली भी चमक उठी और उसके चेहरे पर तरुणाई की ताज़गी और बालाकों के भोलेपन का भाव छा गया। ऐसा होता है कि कुछ वनस्पतियाँ खराब मौसम या रात के समय धूसर पत्तियों में दुबक जाती हैं और जब उचित मौसम होता है तो पूरी छटा के साथ खिल उठती हैं। उसने मुझे किसी विशेष, सौहार्द भरी दृष्टि से देखा।

"थोड़ा-थोड़ा खाना है," उसने कहा और मुझे खड्ड में सोते के पास, बड़े-बड़े चौड़े पत्तों वाले मंचूरियाई अखरोट की छाया में बनी अपनी छोटी-सी फ़ान्ज़ा में लिवा ले गया।

फ़ान्ज़ा पुरानी थी, सरकण्डों का छप्पर जाल से ढका था ताकि तूफ़ान न उड़ा ले जाये। खिड़कियों और दरवाज़े में काँच की जगह कागज चिपका था। आसपास कोई सागबाड़ी नहीं थी पर फ़ान्ज़ा के पास जिन्सेंग की जड़ खोदने के लिए आवश्यक बेलचे, फावड़े, खुरपियाँ, छाल की टोकरियाँ और छड़ियाँ आदि विभिन्न औज़ार रखे थे। फ़ान्ज़ा के सामने सोता दिखायी नहीं देता था, वह कहीं ज़मीन के अन्दर-अन्दर, पत्थरों के ढेर के नीचे से बहता था, और इतने पास कि फ़ान्ज़ा में दरवाज़ा खोलकर बैठे-बैठे उसके अनवरत गीत को सुना जा सकता था जो कभी-

कभी हँसमुख परन्तु बहुत दबे-दबे से वार्तालाप जैसा लगता। जब मैंने पहली बार इस वार्तालाप को कान लगाकर सुना तो प्रतीत हुआ मानो वास्तव में "परलोक" हौता है और अब वहाँ सब बिछड़े, एक-दूसरे से प्यार करने वाले लोगों का मिलन हुआ और वे हफ्तों, महीनों दिन-रात बातें कर रहे हैं पर उनका जी नहीं भर रहा...मेरी किस्मत में बहुत सालों तक इस फ़ान्ज़ा में रहना बदा था और इन सभी लम्बे वर्षों के दौरान मैं इस वार्तालाप का उस तरह आदी न हो सका, जैसाकि मैं बाद में टिड्डों, झींगुरों के संगीत का हो गया था, मैं उन पर ध्यान ही न देता था: इन संगीतकारों का संगीत इतना नीरस है कि बहुत ही समय बाद कान उसे सुनना बन्द कर देते हैं - लगता है कि वे शरीर में रक्त संचार की ओर से ध्यान बँटाने और निर्जन स्थान की नीरवता को पूर्णता प्रदान करने के लिए ही बनाये गये हैं जो उनके बिना कभी भी न हो सकती थी; पर मैं भूमिगत वार्तालाप को कभी भी न भूल सका क्योंकि वह हमेशा भिन्न होता और वहाँ से आने वाली चिल्लाहटें इतनी अप्रत्याशित और अद्वितीय होतीं।

जीवन की जड़ के खोजी ने बिना यह पूछे कि मैं कहाँ से और क्यों यहाँ आया हूँ मुझे आश्रय और खाना दिया। और जब मैंने भरपेट खाकर उसकी ओर प्रेम से देखा और उसने एक परिचित, लगभग सगे आदमी की तरह मुस्कान से इसका उत्तर दिया, तभी वह पश्चिम की ओर इशारा करके बोला:

"अशिर्या से?"

मैं उसे फौरन समझ गया और उत्तर में बोला:

"हाँ, मैं रशिया से हूँ।"

"कहाँ है तुम्हारा अर्शिया?" उसने पूछा।

"मेरा अर्शिया," मैंने कहा, "मास्को है। और तुम्हारा कहाँ है?"

उसने उत्तर दिया:

"मेरा अर्शिया शंघाई है।"

निःसन्देह, हमारी भाषा में 'मेरा और तुम्हारा' बिल्कुल संयोग से ही गुंथ गये थे, मानो उस चीनी और मुझ रूसी की आम मातृभूमि अर्शिया हो, पर बहुत वर्षों बाद यहीं, सोते के पास, उसके वार्तालाप के साथ, मैं इस अर्शिया को समझने लगा और इसे मात्र संयोग मानने लगा कि कभी लूवेन का अर्शिया शंघाई में था और मेरा अर्शिया मास्को में..

फ़ान्ज़ा से कोई बीस क़दम की दूरी पर ही बेहद दुर्गम जंगल शुरू होता था, बलूतों और मखमली पेड़ों, छोटी पत्तियों वाले मैपिल, चमखरक और सदाबहार वृक्षों को, अंगूर आदि की बेलों, छाती तक ऊँची नागदौन की कँटीली झाड़ियों और उसी बकायन ने ख़ूब कसकर जकड़ रखा था जो हमारे यहाँ सिर्फ बागों में होती है। लूवेन ने जो अक्सर यहाँ से पानी लाने जाता था, पगडण्डी काट दी थी और यह मुश्किल से दिखती पगडण्डी घने झुरमुट से बचती हुई शीघ्र ही कगार की ओर पहुँचा देती थी और यहाँ वह सारा वार्तालाप फूट पड़ता जो फ़ान्ज़ा के पास

परलोक से आता लगता: सोता चट्टान के नीचे से मृत्युलोक में प्रवेश करता और फौरन शिलाखण्ड से टकराकर इन्द्रधनुषी कणों में बदलकर नीचे गिरता। पर चौड़ी, खड़ी चट्टान भी थोड़ी-थोड़ी रिसती थी, वह हमेशा गीली रहती, हमेशा चमकती रहती और उसकी असंख्य धाराएँ नीचे मिलकर चंचल नाले में बदल जातीं। मैं कभी भी इस परम आनन्द की अनुभूति को न भूल सकूँगा! इस नाले में स्नान मेरी दुरुह यात्रा का कितना बड़ा पुरस्कार था! वहाँ पर्वतमाला के पीछे डांस ने मेरा जीना दूभर कर रखा था और यहाँ, सागर के निकट न मच्छर थे, न गोमक्षिकाएँ थीं, न भुनगे। उस स्थान से कुछ नीचे जहाँ मैं नहा रहा था, पत्थरों के बीच भँवर था। वहाँ मैंने अपने कपड़े धुलने के लिए डाल दिये और खुद कुण्ड में बैठ गया, ऊपर से मेरे सिर पर पानी के छींटे बरस रहे थे जैसे स्नानगृह के फव्वारे से। गिरते पानी का यह शोर जीव-जन्तुओं के लिए खौफनाक आदमी की हर ध्वनि को उनसे छिपा रहा था और वे पानी पीने के लिए बेधड़क नाले के पास आ रहे थे। और पहली ही बार में मैं इस सागरवर्ती टैगा वन में कुछ देख सका। चौड़ी-चौड़ी पत्तियों वाले पेड़ों के साये में उगने वाली घास पर बयालीसवें अक्षांश की चटकीली धूप के चकत्ते बिखरे थे। ग्रीष्म में जो यहाँ सागरवर्ती क्षेत्र में कोहरे का मौसम होता है विरले ही सूर्य अपनी पूर्ण गरिमा और शक्ति के साथ चमकता है और उसने ऐसे सौभाग्य से मेरा उस दिन अभिनन्दन किया। धूप के चकत्तों के बीच मैं पशुओं की लाल खालों पर ठीक ऐसे ही धब्बों को कतई न देख

पाता अगर वे हिलडुल न रहे होते: शायद यहीं कहीं पास में लेटे रहने के बाद चीतल मृग उठकर धूप के चकत्तों के बीच अपनी चित्तियों को झिलमिलाते पानी पीने के लिए चल पड़े। पूरब में जाने वाले किस व्यक्ति ने सागरवर्ती टैगा के इस दुर्लभतम जन्तु के बारे में न सुना होगा, जिसके सींगों में, जब वे नये और खून से भरे होते हैं मानो ऐसी उपचारक शक्ति होती है जो लोगों को जवानी और जीवन का आनन्द लौटा देती है? चीनियों के यहाँ इतने बहुमूल्य इन मृगश्रृंगों के बारे में कितनी ही किवदन्तियाँ सुन चुका हूँ मैं कि सब किस्से-कहानियों पर विश्वास-सा होने लगता है। और अब ये ही सुप्रसिद्ध मृगश्रृंग पानी के बिल्कुल पास मंचूरियाई अखरोट के दो बड़े-बड़े पत्तों के बीच से बाहर निकले, ये मखमली, लाल-खुबानी के रंग के सींग बड़ी-बड़ी सुन्दर सुरमई आँखोंवाले जीते-जागते सिर पर टके थे। 'सुरमई नयन' पानी पर झुका ही था कि उसके पास बिना सींगोंवाला एक सिर दिखायी पड़ा जिसकी आँखें और भी सुन्दर थीं पर सुरमई नहीं - काली चमकीली। इस हिरणी के साथ पतली सींकों जैसे सींगोंवाला तरुण हिरण और बिल्कुल छोटा-सा नन्हा हिरनौटा था, पर उसके पर भी वैसी ही चित्तियाँ थीं जैसी बड़ों के। यह नन्हा-मुन्ना सीधा नाले में जा खड़ा हुआ अपने छोटे-से खुरों पर। हिरनौटा धीरे-धीरे एक पत्थर से दूसरे की ओर आगे बढ़ता हुआ मेरे और अपनी माँ के बीच आ गया और जब माँ ने उसे देखने के लिए नज़र उठायी तो उसकी नज़र पानी की बौछार में बुत बनकर बैठे मुझ ही पर पड़ी। उसको मानो लकवा मार

गया, जड़ होकर वह मुझे ताकती हुई सोचने लगी कि मैं पत्थर हूँ या हिल सकता हूँ। उसकी थूथनी काली थी, किसी पशु के हिसाब से बेहद छोटी, पर कान बहुत बड़े थे, इतने सख़्त, इतने चौकस और उनमें से एक में छेद था - आर-पार चमकता। और कुछ मैं नहीं देख पाया क्योंकि उसकी सुन्दर, काली चमकीली आँखों ने मेरा सारा ध्यान अपनी ही ओर खींच लिया था - और आँखें क्या वे तो फूल थे फूल! मैं फौरन समझ गया कि चीनी लोग इस बहुमूल्य हिरण को क्यों 'हुआ-लू' अर्थात पुष्प-मृग कहते हैं। और उस व्यक्ति की कल्पना करना बड़ा कठिन था जिसने ऐसे फूल को देखकर उसकी ओर बन्दूक तानी और अपनी भयंकर गोली छोड़ दी: गोली का छेद अलग ही चमक रहा था। कहना कठिन है कि हमारी नज़रें कितनी देर तक मिली रहीं - शायद बड़ी देर तक! मैं बड़ी कठिनाई से साँस ले पा रहा था, मेरे लिए जड़ बैठे रहना अधिकाधिक दूभर होता जा रहा था और शायद इस बेचैनी के कारण मेरी पुतलियों पर बिम्ब हिल रहे थे। 'हुआ-लू' ने यह देख लिया, धीरे-धीरे उसने अपनी अगली बेहद पतली, छोटे-से नुकीले खुरवाली टाँग उठाकर मोड़ी और अचानक झटके से उसे सीधा करके पटक दिया। तब 'सुरमई नयन' से अपना सिर उठाया और वह भी मेरी ओर देखने लगा, ऐसे अन्दाज में मानो वह अपने स्वभाव से ही जीवन की छोटी-छोटी, घिनौनी बातों की ओर ध्यान देने का आदी न होने के बावजूद बड़ी ऊँचाई से किसी तुच्छ, अप्रीतिकर चीज़ को देखना चाहता हो। वह मृगराज की गरिमा के साथ मेरी ओर देख

रहा था, बस यही कसर थी कि वह ओहदेदारों की तरह यह नहीं कह रहा था: "हम आपके लिये सब कुछ करने को तैयार हैं पर जल्दी से बताओ कि माजरा क्या है, हम खुद थोड़े ही पता लगायेंगे!" जैसे कि वे किसी मामूली प्रार्थी से कहते हैं। उस समय, जब 'हुआ-लू' ने खुर पटका और 'सुरमई नयन' ने असमंजस के साथ अपना छोटे सींगोंवाला भव्य सिर उठाया, वहाँ, उनसे कुछ आगे बड़ी खलबली-सी हुई और अन्य सिरों के बीच एक बड़ा आगे निकला और पीठ पर काली पेटी जैसी धारीवाला पूरा का पूरा हिरण दिखायी पड़ा। दूर से भी जाहिर था कि 'कलपीठू' नेक नज़र से नहीं देख रहा था, उसकी काली और कलुषित आँखों में झलकता इरादा भी नेक न लगता था। 'हुआ-लू' के संकेत पर 'कलपीठू' के साथ के ये सब हिरण ही मुझे जड़ होकर नहीं निहार रहे थे बल्कि नाले में खड़ा हिरनौटा भी बड़ों की नकल करता ठीक उन्हीं की तरह बुत बनने की कोशिश कर रहा था। धीरे-धीरे उसे ऊब होने लगी, इसके अलावा अन्य हिरणों की तरह निःसन्देह उसे भी किलनियाँ काटे जा रही थीं, उससे न रहा गया और उसने टाँग उठाकर बदन खुजलाया। तब मुझसे भी न रहा गया और मुस्करा दिया, बस तभी 'हुआ-लू' सब समझ गयी और उसने इतनी दृढ़ता और जोर के साथ पैर पटका कि पत्थर टूटकर छींटे उड़ाता पानी में जा गिरा। फिर उसने अचानक अपने काले होंठ हिलाये और बिल्कुल आदमियों की तरह सीटी बजायी और जब वह मुड़कर दौड़ी तो उसने अपनी दुम पर बने खास, सफ़ेद रुमाल को फुला

दिया ताकि उसके पीछेवाले हिरण को पता चलता रहे कि वह झाड़ियों में किस ओर भागेगी। अपनी माँ के पीछे हिरनौटा और 'सुरमई नयन', 'कलपीठू' तथा अन्य हिरण दौड़ पड़े। जब सब भाग चुके थे एक सलोनी हिरणी नाले की धारा के बीचोंबीच दौड़ी-दौड़ी आयी और खड़ी हो गयी, मानो वह अपने सलोने मुखड़े से पूछ रही थी: "क्या हो गया, वे कहाँ भाग गये?" अचानक वह विपरीत दिशा में कुलांचें भरती नाले के पार चली गयी, शीघ्र ही वह खड्ड के आधे ढाल पर चढ़ चुकी थी, उसने ऊपर से मेरी ओर देखा, फिर चौकड़ी भरने लगी, ढाल पर चढ़कर फिर उसने मेरी ओर देखा और काली चट्टान और नीले आकाश की सीमा के पीछे अगोचर हो गयी।

2

लूवेन ने सागरवर्ती प्रदेश के प्रचण्ड तूफ़ानों से अपनी फ़ान्ज़ा को गहरे खड्ड में छिपा रखा था, पर अगर खड्ड की ढाल पर कोई सौ मीटर चढ़ा जाये तो वहाँ सागर, प्रशान्त महासागर दिखायी पड़ेगा। हमारा चिकी-चिकी खड्ड उस स्थान के बहुत पास था, जहाँ हिरणों से मेरी भेंट हुई, वह चौड़े ज़ुसुख़े कन्दर से जुड़ा था, यहाँ जलधारा काफ़ी शान्त थी, कन्दर धीरे-धीरे घाटी में बदल जाता और पहाड़ी खड्डों और कन्दरों में अपनी यातना भरी दौड़ पूरी करके प्रशान्त और भव्य नदी महासागर से जा मिलती।

यहाँ मेरे आने के अगले ही दिन ज़ुसुख़े की खाड़ी में प्रवासियों को लेकर स्टीमर आया और जब तक वे यहाँ बसने का बन्दोबस्त

कर रहे थे, वह दो हफ्ते तक लंगर डाले खड़ा रहा। और इन्हीं दो सप्ताहों में मेरे जीवन की वही सबसे बड़ी घटना हुई जिसके बारे में ही मैं बताऊँगा। वह घाटी जहाँ ज़ुसुख़े दौड़ती है पूरी फूलों से पटी है, यहीं मैंने हर फूल की रामकहानी की मर्मभेदी सादगी को समझना सीखा: ज़ुसुख़े का हर फूल अपने आप में एक नन्हा सूर्य है, इसी नाते वह धरती से सूर्य की किरण के मिलन की पूरी गाथा बखान करता है। काश, मैं भी ज़ुसुख़े के इन भोले-भाले फूलों की बखान करता है। काश, मैं भी ज़ुसुख़े के इन भोले-भाले फूलों की तरह ही अपनी कहानी सुना पाता! वहाँ आइरिस की फीके आसमानी से लेकर, समझो, काले रंग तक के फूल, लगभग सभी शेडों के आर्किड, लिली के लाल, नारंगी, पीले फूल थे और उनके बीच सर्वत्र नन्हे चटक लाल तारों की तरह कार्नेशन के फूल बिखरे थे। इन घाटियों में, सादे और सुन्दर फूलों के बीच सर्वत्र उड़ते फूलों जैसी तितलियाँ उड़तीं, काली और लाल चित्तियोंवाली ओपोलो, इन्द्रधनुषी आभावाली ईंट-सी लाल अर्टिका और बड़ी-बड़ी गहरी नीली अद्भुत अबाबील पुछी तितलियाँ। उनमें से कुछ पानी पर बैठकर तैर सकती थीं - मैंने यहीं पहली बार ऐसी तितलियाँ देखी थीं, और फिर वे फुर्र से उड़कर फूलों के सागर के ऊपर मण्डराने लगतीं। फूलों पर मधुमक्खियाँ और ततैये भिनभिनाते, हवा में काले, नारंगी और सफ़ेद पेटोंवाले झबरीले भौंरे जोर-जोर से गुंजार करते उड़ते। कभी-कभी ऐसा होता था कि मैं फूल के अन्दर झाँकता और वहाँ मुझे कुछ ऐसा कीट दिखता जो मैंने कभी देखा नहीं और

उसका नाम भी आज तक मुझे पता नहीं - यह न भौंरा लगता, न मधुमक्खी, न ततैया। और ज़मीन पर फूलों के बीच तरह-तरह की इल्लियाँ रेंगतीं, मौका पड़ने पर फुर्रसे नाक की सीध में उड़ने को तैयार अवशिष्ट भृंग दुबके बैठे रहते। घाटी के इन सभी फूलों और जीवधारियों के बीच मैं ही अकेला था जो सूरज की ओर न सीधा देख सकता था और न उनकी तरह साफ़गोई से अपनी बात कह सकता था, कम से कम मुझे तो यही लगता था। मैं सूरज से आँखें चार करने से कतराते हुए उसके बारे में बता सकता हूँ। मैं मानव हूँ, सूरज को देखकर अन्धा हो जाता हूँ और मैं उसके द्वारा आलोकित सभी विविध वस्तुओं की ओर सगों की तरह अपना ध्यान मोड़कर और उनसे प्रतिक्षिप्त किरणों को समेटकर ही उसके बारे में बता सकता हूँ।

हमारी फ़ान्ज़ा के ऊपरवाली चट्टान से मुझे स्टीमर दिखायी पड़ा और मुझे लोगों को देखने की इच्छा हुई। जब तक मैं उस स्थान पर उतरा जहाँ हमारा चिकी-चिकी नाला जुसुखे नदी में गिरता था, बहुत गर्मी हो गयी थी, मैं थक गया था और मुझे आराम करने की इच्छा हो रही थी। यहाँ नाले और जुसुखे नदी के संगम के पास अंगूर की बेलों ने मंचूरियाई अखरोट के छोटे-छोटे पेड़ों को ऐसा जकड़ रखा था कि उनमें से कुछ गहरे हरे, सूर्य की किरणों के लिए अभेद्य तम्बू बन गये थे। मुझे ऐसे किसी तम्बू में घुसने और वहाँ अगर आरामदेह ठण्डक हुई तो कुछ देर बैठकर दम लेने की तीव्र इच्छा हुई। ज़मीन तक लटकी अंगूर की काफ़ी मोटी बेलों के जाल को चीरकर उसमें घुसना इतना आसान न

था। पर बेलों को हटाकर मुझे लता-बेलों से जकड़े, बाहर से न दिखते पेड़ के तने के इर्द-गिर्द काफ़ी खुली, सूखी जगह दिखायी दी। और मैं ठण्डक में पेड़ के धूसर तने से पीठ टिकाकर एक पत्थर पर बैठ गया। निःसन्देह यह तम्बू सूर्य की किरणों के लिए इतना अभेद्य न था जैसाकि बाहर से देखने पर लगता था। यहाँ की हरियाली मानो अपनी ही आभा से दीप्तिमान थी और चारों ओर धूप की चित्तियाँ बिखरी थीं। वातावरण में पूर्ण नीरवता व्याप्त थी, इसलिए कुछ देर बाद मुझे किसी हरकत को, धूप की चित्तियों की झिलमिल को देखकर बड़ी हैरानी हुई, मानो बाहर से कोई कभी सूर्य की किरणों को रोकता तो कभी फिर से आने देता। सावधानी के साथ मैंने अंगूर की लताओं को हटाया और मुझे कुछ ही कदमों की दूरी पर अपनी चित्तियों से ढकी हिरणी दिखायी दी। सौभाग्य से हवा का रुख मेरी ओर था और इतनी दूरी पर तो मैं भी हिरण की गंध महसूस कर सकता था। पर क्या होता अगर हवा का रुख उसकी ओर पलट जाता! मुझे यह डर लगने लगा कि मेरी किसी अनभिप्रेत सरसराहट से उसे भनक पड़ जायेगी। मैं अपनी साँस लगभग रोके हुए था और वह पास आती जा रही थी, सभी सतर्क जन्तुओं की तरह - एक कदम रखती और रुक जाती, अपने अत्यन्त लम्बे और चौकस कानों को उस ओर मोड़ती जिधर से उसे हवा में कोई भनक महसूस होती। एक बार तो मैं यही सोच बैठा कि सब स्वाहा हो गया: उसने कान सीधे मेरी ओर मोड़ लिये थे, तभी मैंने बायें कान में गोली से बिंधे छेद को

देखा और बड़े हर्ष के साथ, मानो किसी मित्र से भेंट हुई हो, मैंने उसी हिरणी को पहचान लिया जिसने पहाड़ी नाले के तट पर खुर पटककर मुझे धमकाया था। तब की तरह अब भी उसने असमंजस में या सोच में पड़कर अगली टाँग उठायी और ऐसे ही खड़ी रह गयी और अगर मेरी साँस अंगूर की एक भी पत्ती से टकरा जाती तो वह खुर पटककर गायब हो जाती। पर मैं जड़ हो गया और उसने धीरे-धीरे खुर ज़मीन पर रखा, मेरी ओर एक कदम बढ़ी, फिर और एक। मैं उसकी आँखों को एकटक देख रहा था और उनके सौन्दर्य से चकित हो रहा था, कभी मैं किसी नारी के चेहरे पर ऐसी आँखों की कल्पना करता, तो कभी जुसुखे के ढेरों फूलों के बीच अचानक दिखायी पड़े किसी डण्ठल पर लगे अद्भुत फूलों के रूप में। तब मैं एक बार फिर पुष्प-मृग नाम की आवश्यकता को समझ गया और यह सोचकर मुझे हर्ष हो रहा था कि कई हज़ार वर्ष पूर्व किसी अज्ञात, पीले चेहरे वाले कवि ने इन आँखों को देख उन्हें पुष्प समझा और अब मैं, गोरे चेहरे वाला भी, उन्हें पुष्प ही समझता हूँ; मुझे इस पर भी हर्ष हो रहा था कि मैं अकेला नहीं हूँ, कि दुनिया में निर्विवाद वस्तुएँ भी हैं। मैं यह भी समझ गया कि चीनी क्यों इसी हिरण के सींगों को मूल्यवान मानते हैं न कि उजड्ड काकड़ या पाढ़े के सींगों को। क्या दुनिया में लाभदायक और उपचारक चीज़ों की कोई कमी है पर ऐसा दुनिया में बहुत कम ही होता है कि चीज़ लाभदायक भी हो और सौन्दर्य भी उसका पूर्ण हो। इस बीच ‘हुआ-लू’ मेरे तम्बू की ओर कुछ कदम बढ़कर पिछली टाँगों पर खड़ी हो गयी

और अगली मेरे सिर के ऊपर ऊँचाई पर टिका दी, अंगूर की लताओं के जाल में से नन्हे-नन्हे सुघड़ खुर नीचे मेरे पास लटके थे। मैं उसे अंगूर के रसीले पत्ते खाते सुन रहा था जो हिरणों का प्रिय खाद्य है, हम आदमियों के लिए भी वे स्वाद में काफ़ी रुचिकर होते हैं। उसके बड़े थनों को देखकर जिनसे दूध टपक रहा था मुझे उसके हिरनौटे की याद आ गयी पर सहज ही मैं झुककर किसी छिद्र में से झाँकने का साहस न कर सका: ज़रूर ही वह यही कहीं आसपास होना चाहिए था। एक शिकारी के नाते, अर्थात एक पशु के नाते मुझे उचककर झट से हिरण के खुर पकड़ लेने का बड़ा प्रलोभन हो रहा था। जी हाँ, मैं ताकतवर हूँ और महसूस करता हूँ कि अगर मैं दोनों हाथों से टखनों को कसकर पकड़ लेता तो मैं उसे पछाड़कर पेटी से बाँध सकता था। कोई भी शिकारी पशु को पकड़कर अपना बनाने की मेरी लगभग अनियंत्रित इच्छा को समझ सकता है। पर मुझमें एक दूसरा आदमी भी बैठा था जिसे इसके विपरीत सुष्ठुता के क्षण को पकड़ने की आवश्यकता नहीं, उल्टे, उसे उस क्षण को अक्षुण्ण रखकर सदा के लिए मन में सँजोने की इच्छा होती है। निःसन्देह हम सब आदमी ही हैं और हम सब में थोड़ा बहुत यह होता ही है, आख़िर सबसे उत्साही शिकारी भी गोली लगने से दम तोड़ते जीव को देखकर कठिनाई से अपने कमज़ोर दिल को कड़ा कर पाता है और सबसे भावुक कवि फूल को भी, हिरण को भी और पक्षी को भी पाने की इच्छा रखता है। शिकारी के रूप में मैं अपने को अच्छी तरह जानता था पर मैंने कभी सोचा

भी नहीं, न जाना कि मुझमें कोई दूसरा आदमी बैठा है, कि सौन्दर्य या क्या कहें उसे, एक हिरण की तरह स्वयं मेरे ही, एक शिकारी के हाथ-पाँव बाँध सकता हैं। मुझमें दो व्यक्तियों का द्वन्द्व चल रहा था। एक कह रहा था: "मौका हाथ से निकल जायेगा, फिर कभी न आयेगा और तू ज़िन्दगी भर पछताता रहेगा। पकड़ ले जल्दी से और दुनिया के सबसे सुन्दर जीव की मादा - 'हुआ-लू' तेरे हाथ आ जायेगी।" दूसरी आवाज़ कह रही थी: "चुप बैठ! सुष्ठुता के क्षण को हाथों से छुए बिना ही अक्षुण्ण रखा जा सकता है।" यह तो उसी कहानी वाली बात थी जब शिकारी न हंसनी का निशाना साधा और अचानक हंसनी ने उससे तीर न चलाने, कुछ रुकने का अनुरोध किया। बाद में ही पता चलेगा कि यह हंसनी के रूप में राजकुमारी थी, शिकारी ने तीर नही चलाया, और बाद में उसके समक्ष जीती-जागती रूपसी राजकुमारी प्रकट हुई, अन्यथा उसके हाथ मरी हंसनी ही आती। इसी तरह मैं भी साँस रोके अपने से संघर्ष कर रहा था। पर इसके लिए मुझे क्या नहीं करना पड़ रहा था, कितना मूल्य चुकाना पड़ रहा था मुझे इसके लिए! अपने को वश में करते-करते मुझमें शिकार पर टूटने को तत्पर कुत्ते की तरह कँपकँपी दौड़ने लगी और शायद मेरी यह पाशविक कँपकँपी उसमें आशंका के रूप में संचारित हो गयी। 'हुआ-लू' ने धीरे से अपने खुर अंगूर की लताओं के जाल से बाहर निकाले, अपनी चारों पतली-पतली टाँगों पर खड़ी हुई, झुरमुट के अन्धियारे में वह विशेष ध्यान के साथ मेरी आँखों में झाँकी, फिर मुड़कर चल

पड़ी, अचानक रुककर उसने पीछे मुड़कर देखा; न जाने कहाँ से हिरनौटा दौड़ा-दौड़ा उसके पास आया। उसके साथ वह काफ़ी देर तक सीधे मेरी आँखों में झाँकती रही और फिर झाड़ियों में ओझल हो गयी।

3

हर वसन्त में और गर्मियों व पतझड़ की हर बाढ़ के साथ नदी पहाड़ी टैगा से सागर तट पर ढेरों गिरे और तूफ़ानों से उखड़े वन दानवों - पापलरों, देवदारों, चमखरकों, चिरोबेलों को घसीटकर लाती हैं और उन्हें बालू से ढक देती है, इतनी अधिक बालू से, सालों तक यही क्रम चलता रहता है, कि सागर को पीछे हटना पड़ जाता है और वहाँ खाड़ी बन जाती है।

जल और थल की सीधी सीमा रेखा को अर्धवृत्ताकार बनाने के लिए सागर और जुसुखे नदी को आ़खिर कितनी सदियों तक काम करना पड़ा होगा? खाड़ी के बीच नन्हे-से पथरीले टापू पर तब तक आ़खिर कितने समुद्री जीव विचर चुके थे जब अन्ततः स्टीमर के भोंपू ने समुद्री वीरानगी की निःस्तब्धता को भंग कर दिया और सब सीलें डर के मारे टापू से पानी में कूद गयीं?

सागर के बिल्कुल पास की रेत पर किसी अश्मीभूत दैत्य की पीठ की तरह बालू से अधढका भीमकाय पेड़ दिखायी दे रहा था।

उसकी फुनगी पर बची दो विशाल काली टेढ़ी-मेढ़ी डालें नीले आकाश की पृष्ठभूमि में क्षितिज तक फैली लगती थीं। इस पेड़

की छोटी-छोटी शाखाओं पर सफ़ेद, गोल-गोल सुन्दर पिटारियाँ-सी लटकी थीं - ये उन जलसाहियों के कंकाल थे जिन्हें तूफ़ानों ने तट पर ला पटका था। मेरी ओर पीठ किये बैठी कोई स्त्री अपनी झोली में समुद्र के इन उपहारों को भर रही थी। शायद मुझ पर अभी भी अंगूर की बेलों से जकड़े पेड़ के पास देखे मोहक जन्तु का जबर्दस्त जादू छाया हुआ था, इस अपरिचित स्त्री में कुछ ऐसी चीज़ थी जो मुझे 'हुआ-लू' की याद दिलाती थी, और मुझे पक्का विश्वास था कि बस अभी, जब वह मेरी ओर मुड़ेगी, मैं एक मानव के चेहरे पर वे ही सुन्दर आँखें देखूँगा। मैं आज तक यह नहीं समझ पाता कि इसका स्रोत क्या था, क्यों ऐसा प्रतीत होता था, आख़िर नाप-तौलकर उसकी छवि उतारी जाती तो बिल्कुल ही भिन्न होती, पर मुझे तो यही लग रहा था कि वह जैसे ही मुडेगी, पुष्प-मृग 'हुआ-लू' ही नारी के रूप में मेरे समक्ष साक्षात प्रकट होगी। और फिर, मानो मेरे पूर्वाभास के प्रत्युत्तर में हंसनी राजकुमारी की कहानी की तरह रूपान्तर शुरू हो गया। आँखें उसकी हूबहू 'हुआ-लू' जैसी थीं कि हिरणी के बाकी सभी अंग-प्रत्यंग - खाल, काले होंठ, चौकस कान - अगोचर रुप से मानव के नाक-नक्श में ढल रहे थे, साथ ही उनमें मानो सत्य और सौन्दर्य की अभिन्नता की दैवी पुष्टि के रूप में हिरणी जैसा ही जादुई संयोग था। वह मुझे आशंका और आश्चर्य के साथ घूर रही थी, लगता था कि वह, बस अभी, हिरणी की तरह पाँव पटककर मुझे धमकायेगी और भाग जायेगी। न जाने कितने भाव उमड़ते हैं मेरे मन में, कितने ही

विचार कोहरे की तरह तैरते जाते हैं, उन्हीं में मानो अस्पष्ट और अबोधगम्य संसार का कोई उपादान निहित हो, पर इसके लिए पूर्ण रूप से सही और सटीक शब्द मैं आज तक न खोज पाया, और न ही मुझे ज्ञात है, कभी मेरी मुक्ति का क्षण भी आयेगा। हाँ, मैं यही कहूँगा कि उन्मुक्तता शब्द ही उस विशेष मनोदशा का यथोचित नाम होगा जब अद्भुत जन्तु की सुष्ठुता को समझ लेने के उपरान्त मुझे अचानक उसके अनवरत सिलसिले को एक मानव में जारी रखने की सम्भावना मिली। ऐसी अनुभूति हो रही थी मानो मैं तंग खड्ड से निकलकर नीले महासागर में अपनी अनन्त यात्रा पर जाती जुसुखे नदी की फूलों से पटी घाटी में पहुँच गया हूँ।

और सबसे बड़ी बात यह थी कि वहाँ भी आदमी दो थे। जब 'हुआ-लू' ने अंगूर की बेलों के जाल से मेरे पास अपने खुर ठूँसे थे, एक शिकारी था जिसका प्रयोग अपने बलिष्ठ हाथों से उसकी टाँगों को टखनों पर कसकर पकड़ना था, और दूसरा - अभी तक मेरे लिए अज्ञात व्यक्ति जो अपने विचलित मन में चिरकाल तक उस क्षण को सँजो रहा था। हाँ, तो अब मैं बेहिचक कह सकता हूँ, ठीक उसी रूप में, ठीक उसी, सहमे-सहमे उल्लास और अदम्य आकुलता से परिपूर्ण, मुझे अज्ञात व्यक्ति के रूप में, मैं उसके पास गया और वह फौरन मुझे समझ गयी। वह मुझे समझे और प्रत्युत्तर दिये बिना नहीं रह सकती थी। अगर ऐसा जीवन में एक ही बार न होता, बल्कि सदा हममें रहता तो हम सब सदा और सर्वत्र प्रत्येक पुष्प, प्रत्येक हंसनी,

प्रत्येक हिरणी को राजकुमारी में बदल देते और उसी तरह रहते जैसे मैं अपनी इस कायाकल्पित राजकुमारी के साथ जुसुखे की फूलों की वादी में, पहाड़ों में, नदियों और नालों के तटों पर रहता था। हम दोनों धुँधली पहाड़ी पर गये जो कभी पहले ज्वालामुखी थी: अब वहाँ मूल्यवान चीतलों की जन्मस्थली थी। हम दोनों फ़ान्ज़ा में अपने पूर्वजों के भूमिगत वार्तालाप को सुनते, यहीं जीवन की जड़ का खोजी लूवेन हमें इस मूल के जादुई गुणों के बारे में बताता जिसमें आदमी को चिरयुवा और सुन्दर बनाने की क्षमता थी। उसने हमें जीवन की जड़, मृगश्रृंगों और किन्हीं उपचारक खुमियों से बना चूर्ण तक दिखाया था, पर जब हम हँसते हुए उससे सदाबहार जवानी और ख़ूबसूरती का चूर्ण माँगने लगे उसने नाराज होकर हमारे साथ बोलना बन्द कर दिया। शायद वह इसलिए खिन्न हो गया कि हम उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते और हँसी उड़ा रहे थे। यह भी हो सकता था कि वह, जिसे विश्वास था कि जीवन की जड़ की खोज के लिए निर्मल आत्मा होनी चाहिए, इस ओर इंगित करना चाहता था कि हमें भी उसी की, खोजी की तरह अपनी आत्मा की निर्मलता के बारे में सोचना चाहिए। यह भी सम्भव है कि बूढ़ा लूवेन हमारे सुख पर जहाँ-तहाँ छाती काली घटाओं में चमकती बिजलियों को देख सकता हो। मुझमें दो व्यक्ति जी रहे थे, वही जो 'हुआ-लू' सुन्दरी के सम्बन्ध में प्रकट हुए थे: एक - शिकारी और दूसरा - अभी तक मुझे अज्ञात व्यक्ति। और जब हम 'हुआ-लू' की घात में बैठने के लिए मेरे अंगूर के बेलों के तम्बू

की ओर जा रहे थे, मैंने एक गलती कर दी - मैंने नहीं, बल्कि मुझमें बैठे शिकारी ने। वह क्षुब्ध हो गयी और अचानक मेरे प्रति उसका व्यवहार बदल गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि आकस्मिक वज्रपात ने हमारे गठबन्धन को काट दिया। पर मैं फिर से अपने अहम को समेटकर अपनी स्वाभाविक, सबसे बुलन्द चोटी पर पहुँच गया। तब हम अंगूर की बेलों के तम्बू में बैठे थे - अचानक झरोखे से हमें अपनी सुन्दरता की छटा बिखरेती 'हुआ-लू' दिखायी दी। हिरनौटे के साथ उसने मैदान को पार किया और हमारे बिल्कुल पास आकर अंगूर की पत्तियाँ खाने लगी, फिर आगे कहीं झाड़ियों में चली गयी। अपनी उसी बुलन्द चोटी पर रहते हुए मैं उसे 'हुआ-लू' से अपनी भेंट के बारे में बताने लगा जब वह पिछली टाँगों पर खड़ी थी और उसके नन्हे-नन्हे खुर अंगूर की लताओं के जाल में घुसे हुए थे और कैसे मैं इन खुरों को पकड़ने के लोभ को दबाते हुए कँपकँपा रहा था, और मुझे अज्ञात किसी दूसरे व्यक्ति ने सुष्ठुता के क्षण को आत्मसात करने में मेरी सहायता की, और मानो पुरस्कार-स्वरूप यह पुष्प-मृग राजकुमारी में परिवर्तित हो गया..

अपनी इस कहानी से मैं उसे दिखाना चाहता था कि मैं उदात्तता के शिखर पर रह सकता हूँ, कि इससे पहले की मेरी गलती संयोगमात्र थी और मैं कभी उसे नहीं दोहराऊँगा। मैं उसकी ओर देखे बिना, मानो हमें घेरे हरियाले वातावरण से बोल रहा था। मैं उससे नज़रें मिलाये बिना अपने दिल का सबसे गहरा राज खोल देना चाहता था और जब मुझे लगा कि मैं अपना लक्ष्य प्राप्त

कर चुका हूँ, अब तो मैं उसकी आँखों से अपनी आँखें मिला सकता हूँ, बस अब मैं उनमें देखूँगा... मैंने सोचा कि वहाँ नीलिमा ही नीलिमा देखूँगा पर अचानक सब उल्टा ही अजीब-सा निकला - मुझे वहाँ आग मिली। दहकते गाल, अधमुंदी आँखें, वह घास पर लेट गयी। उसी क्षण स्टीमर का भोंपू सुनायी पड़ा, वह उसे सुने बिना नहीं रह सकती थी पर वह सुन नहीं रही थी। और मैं ठीक उसी तरह जब हिरणी से साक्षात्कार हुआ था, जड़वत हो गया, फिर मैं भी उसी की तरह लपटों में दहक रहा था, फिर धातु मेरी तप कर सफ़ेद हो गयी, पर मैं जड़ बैठा रहा। तब स्टीमर का भोंपू दुबारा बजा, वह खड़ी हुई, बाल ठीक किये और मेरी ओर देखे बिना चली गयी..

4

सागर के शोर में ऐसी क्या बात है कि वह तट पर खड़े मानव को सांत्वना प्रदान करता है? लहरों के थपेड़ों की अनवरत ध्वनि पृथ्वी गृह के जीवन के दीर्घकाल के बारे में बताती है, सागर की लहरें ग्रह की घड़ी के समान हैं। और जब इस दीर्घकाल की घड़ियाँ तट पर बिखरी सीपियों, तारामीनों और जलसाहियों के बीच मानव के अल्प जीवन के क्षणों से जुड़ती हैं तो सम्पूर्ण जीवन के बारे में गहन मनन का सूत्रपात होता है और मानव की तुच्छ व्यक्तिगत पीड़ा कुण्ठित हो जाती है, कहीं दूर से आती उसकी हल्की-दबी कसक भर रह जाती है..

सागर के ऐन किनारे काले दिल की आकृति का पत्थर था।

शायद कभी किसी प्रचण्डतम झंझावात ने उसे चट्टान से तोड़कर किसी दूसरी, जलमग्न चट्टान पर लापरवाही से टिका दिया: दिल की आकृति का यह पत्थर, अगर उससे छाती को चिपकाकर उस पर जड़वत लेट जाता तो वह मानो लहरों के थपेड़ों से हौले-हौले डोलता लगता। पर मैं सही-सही नहीं जानता कि ऐसा सम्भव भी है या नहीं। हो सकता है कि यह सागर और पत्थर नहीं बल्कि खुद मैं ही अपने दिल की धड़कनों से हिल रहा होऊँ, मेरा एकाकीपन इतना बोझिल था और किसी मानव की संगत की इतनी उत्कट इच्छा थी मुझमें कि इस पत्थर को ही मैं इंसान मान बैठा और उसके साथ इंसानों जैसा व्यवहार किया।

पत्थर-दिल ऊपर से काला था और उसका पानी के पासवाला हिस्सा बेहद हरा। इसका कारण यह था कि जब ज्वार आता और पत्थर पूरा पानी में डूब जाता तो हरे शैवाल कुछ देर जी लेते और जब भाटे के साथ पानी चला जाता वे नये ज्वार के पानी की आस में लटक जाते। मैं इस पत्थर पर चढ़कर तब तक देखता रहा जब तक स्टीमर आँखों से ओझल न हो गया। इसके बाद मैं पत्थर पर लेट गया और बड़ी देर तक सुनता रहा; यह पत्थर-दिल अपने ही ढंग से धड़क रहा था और धीरे-धीरे करके इस दिल के जरिये सारे परिवेश से मेरा नाता जुड़ गया, और सब कुछ मुझे अपना, सजीव लग रहा था। धीरे-धीरे करके पुस्तकों से प्रकृति के जीवन के बारे में सीखी बातें कि सब अलग-अलग होते हैं, लोग - ये लोग हैं, जानवर - केवल जानवर ही हैं, पेड़-

पौधे भी और मृत पत्थर भी अलग हैं - ये सब, अपनी नहीं, पुस्तकों से ली गयी बातें, मानो पिघलकर उड़ गयीं और मुझे सब कुछ मेरे अपनों की तरह लगने लगा, दिवालोक में सब कुछ लोगों की तरह लगने लगा: पत्थर, शैवाल, तट से टकराती लहरें और पत्थरों पर ठीक उसी तरह अपने डैने सुखाते पनकौए, जैसे मछलीमारी से लौटकर मछुए अपने जाल सुखाते हैं लहरों की थप-थप ने मुझे दिलासा देकर सुला दिया और जब मुझे होश आया तो तट और मेरे बीच पानी ही पानी था; पत्थर आधा पानी में डूब चुका था, उसके चारों ओर शैवाल ऐसे हिल रहे थे मानो ज़िन्दा हों, और भूजिह्वा पर बैठे पनकौए अब लहरों की मार में आ गये थे: वे बैठे अपने डैने सुखा रहे थे - अचानक लहर आकर उन्हें नहला देती, कभी-कभी तो वे लुढ़क जाते, पर वे फिर से संभलकर बैठ जाते ओर सिक्कों पर बने उकाबों की तरह डैने फैलाकर सुखाने लगते। तब मेरे मन में यह प्रश्न उठा, जो मानो समाधान के लिए बड़ा महत्वपूर्ण और आवश्यक था: पनकौए क्यों इसी भूजिह्वा पर जमे रहते हैं, अपने डैने सुखाने के लिए कुछ ऊपर क्यों नहीं चले जाते?

और यह अगले दिन की बात है, मैं फिर से यहाँ आया सागर की लहरों की थप-थप को सुनने, बड़ी देर तक मैं उस दिशा में ताकता रहा जिधर स्टीमर गया था और जब सुध लौटी तो मैंने अपने को धुंध से घिरा पाया। धुंध में तट पर कुछ करते पुनर्वासी कठिनाई से दिखायी दे रहे थे। मैंने सोचा कि उनमें से चाहे किसी से पूछो, हरेक मुझे बेघर आवारा ही कहेगा और झट

से अपनी कुल्हाड़ी या बेलचा छिपा देगा ताकि मेरी नज़र न पड़ जाये। कितनी गलती पर हैं वे! था मैं आवारा, पर अब मैं छलनी-छलनी हो चुका हूँ और इसकी अपनी पीड़ा के माध्यम से सर्वत्र मुझे एक ही अनुभूति होती है: अब जहाँ जाऊँ वहीं मेरी जन्मभूमि है, धरती पर सभी जीवधारियों में मेरे जैसी ही कुछ बात है, और यह लगता है कि मेरे लिए अब खोजने को कुछ रहा नहीं, बाहर चाहे कोई भी परिवर्तन हो पर मेरे अन्दर वह कुछ भी नया नहीं भर सकता। मेरे दिमाग में यह विचार उमड़ रहा था कि जन्मभूमि वहाँ नहीं जहाँ बस तुम्हारा जन्म हुआ, बल्कि वहाँ होती है जहाँ तुम यह समझे कि तुम्हें अपना सुख मिला, उसे गले लगाने के लिए तुम आगे बढ़े, उस पर विश्वास करके तुमने आत्मसमर्पण किया, और वहाँ से उसी बिन्दु पर गोलियां चलने लगीं जहाँ तुम्हारा सुख खड़ा है।

सागर की ग्रीष्मकालीन भभक ऊपर उठ रही थी, पर्वतमाला पर वह ठण्डी होती और कोहरे व झींसी में बदलकर नीचे लौट रही थी। पर मुझे प्रतीत हो रहा था मानो चौड़े-चौड़े सफ़ेद लबादों में लिपटे दैत्याकार चिट्टे निशानेबाज लहलहाते-से चढ़ाई कर रहे हैं और मुझे फौरन गोलियों से नहीं बल्कि छोटे-छोटे छर्रों से छलनी कर रहे हैं ताकि मैं छलनी बनकर नष्ट हुआ अपने आप में घुटकर जिऊँ, तड़पूँ और इस अनिवार्य यातना के माध्यम से सब समझ जाऊँ। नहीं! अब मैं आवारा नहीं रहा और पनकौओं को मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि इस भूजिह्वा पर डैने सुखाने में कठिनाई के बावजूद भी वे क्यों इससे ऊँची किसी दूसरी चट्टान

पर नहीं चले जाते: यहाँ उन्हें मछली का शिकार करना पड़ा और वे यहीं रह गये। वे सोचते हैं: "अगर ऊपर चले गये जहाँ डैने अच्छी तरह सूखते हैं तो कहीं मछली हाथ से न निकल जाये। नहीं हम इसी भूजिह्वा पर रहेंगें।" बस रहते हैं यहीं, काट रहे हैं ज़िन्दगी, समुद्र में भूजिह्वा को आबाद कर रहे हैं। मैं यह भी महसूस कर रहा था कि देखो यह दिल जैसा पत्थर पड़ा लहरों के थपेड़ों से हौले-हौले हिल रहा है और उसे इसी तरह सौ साल तक, इससे भी अधिक, हज़ार साल तक यूँ ही पड़े-पड़े हिलना पड़ेगा, पर उसके समक्ष मुझमें कोई विशेष श्रेष्ठता नहीं है तो मैं क्यों अपना स्थान बदलूँ और सान्त्वना पाऊँ? कोई सान्त्वना नहीं!

और जैसे ही मैंने पूरी शक्ति के साथ, पूरी दृढ़ता के साथ अपने से कहा कि मेरे लिए कोई सान्त्वना नहीं, सुख की पुनरावृत्ति नहीं और कहीं से किसी अच्छाई की प्रतीक्षा का प्रलोभन व्यर्थ है तो कुछ समय के लिए मेरी पीड़ा मिट गयी और पल भर के लिए मुझे यह तक लगा कि गोलियों से छलनी होने के बाद भी मेरे लिए जीवन जारी है। तब मुझे अपने लूवेन की याद आयी और मैं अपने नीड़ की तरह उसकी फ़ान्ज़ा की ओर चल पड़ा।

उस रात खड्ड की गहराई में भरे उमस ने सभी पंखदार कीड़ों को उड़ा दिया और उनमें से करोड़ों, अदृश्य चाँद से मानो चाँदनी उधार लेकर अपनी नन्ही-नन्ही बत्तियाँ जलाये हवा में स्वयंवर रच रहे थे। मैं फ़ान्ज़ा के ओसारे में बैठा था और शुरु से लेकर आख़िर तक किसी जुगनू के पथ पर नज़रें टिकाये रखने की

कोशिश कर रहा था। उनमें से हरेक को बेहद अल्पकालीन ज्योति मिली थी, एक सेकण्ड, शायद दो सेकण्ड चमककर वे अन्धकार में विलीन हो जाते पर तभी नयी ज्योति प्रकट हो जाती। क्या यह वही कीट होता जो कुछ दम लेने के बाद फिर से अपने चमकीले पथ को जारी रखता या एक का सफर समाप्त होता और दूसरा उसे जारी रखता जैसे कि हमारी मानवी दुनिया में होता है?

"लूवेन," मैंने पूछा, "तेरा यह कैसे समझता है?"

अचानक लूवेन ने उत्तर दिया:

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

इसका क्या मतलब था?

तभी ज़मीन के अन्दर, जहाँ सदा की तरह अनवरत घटता-बढ़ता वार्तालाप जारी था, अचानक कुछ गरजा। लूवेन ने कान लगाकर सुना और बेहद गम्भीर हो गया।

"शायद वहाँ पत्थर गिरा है न?" मैं बोला।

वह मेरी बात नहीं समझा। मैंने हवा में हाथ से गुफा बनायी, इशारे से बताया कि कैसे पत्थर पानी में गिरा और उसने चश्मे की धारा को रोक दिया। लूवेन पूरी तरह मुझसे सहमत हो गया और फिर से बोला:

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

उसने दूसरी बार ऐसा कहा पर मैं अभी तक समझ न पाया था

कि उसका मतलब क्या है। अचानक लाइबा दुम दबाकर दौड़ी और फ़ान्ज़ा के कोने में दुबक गयी, यही प्रतीत होता था कि कहीं बहुत पास से घास गुजरा है, क्या पता वह यहीं कहीं पास में पत्थरों में घात लगाकर लाइबा को दबोचने के लिए बैठा हो। हमें अपनी रक्षा के लिए अलाव जलाना पड़ा और तब असंख्य पतंगे आग को देखकर हमारे पास आ जमा हुए। इस तपिश और उमस भरी रात को वे इतने अधिक थे कि उनके पंखों की फड़फड़ स्पष्ट सुनायी दे रही थी। मैंने कभी ऐसा नहीं देखा था कि इतने अधिक पतंगे हों और रात की हवा में उनकी फड़फड़ सुनायी दे। अगर मैं अभी हाल की तरह सामान्य और स्वस्थ होता तो इस फड़फड़ाहट को इतना विशेष महत्व न देता: जीवन की फड़फड़ाहट है बस! पर अब न जाने क्यों इस सब का मुझसे गहरा वास्ता था। मैं चौकन्ना होकर सुन रहा था और अत्यधिक आश्चर्य के कारण आँखें फाड़े मैंने लूवेन से पूछा कि इसका मतलब क्या है और लूवेन ने तीसरी बार अर्थपूर्ण लहजे में कहा:

"मेरा अब वैसे ही समझता जैसे तेरा।"

तब मैंने गौर के साथ लूवेन की ओर देखा और अचानक उसकी बात का मतलब मेरी समझ में आ ही गया: लूवेन का ध्यान न उड़ते जुगनुओं में अटका था, न भूमिगत भूस्खलन में, न असंख्य पतंगों के जीवन की फड़फड़ाहट में - वह तो मुझी पर केन्द्रित था। वह तो इस सम्पूर्ण नैसर्गिक जीवन को कब का आत्मसात कर चुका था और उसी में साँस लेता था, और निःसन्देह वह सब कुछ अपने ही ढंग से समझता था, पर उसके लिए इस सबके

प्रति मेरे ध्यान के माध्यम से मुझको समझना ज़रूरी था। बेशक, वह ख़ूब अच्छी तरह जानता था कि स्टीमर किसको मुझसे छीनकर ले गया। और अब उसने बिज्जू की खाल उठायी जो जीवन की जड़ की खोज के दौरान सदा उसके साथ रहती थी और वहीं मेरे पास ओसारे में उस पर कुत्ते की तरह गठरी बनकर लेट गया। वह हमेशा ऐसी नींद सोता कि रात भर उसके साथ बातें की जा सकतीं और वह नींद में ही विवेकपूर्ण प्रश्न का भी और सोते आदमी की अस्फुट बड़बड़ का भी उत्तर देता।

अब, जब बहुत साल बीत चुके हैं और मैं सब कुछ झेल चुका हूँ। मैं सोचता हूँ कि लौकिक जीवन की सम्पूर्ण आत्मीयता की समझ हमें दुख नहीं, जैसा कि मैं उस रात समझता था बल्कि हर्ष ही देती है; कि दुख तो हल की तरह बस मिट्टी को पलटकर नयी जीवन्त शक्तियों के लिए सम्भावनाएँ ही उभारता है। पर ऐसे बहुतेरे भोले लोग हैं जो हमारे से सम्बन्धित अन्य लोगों के जीवन की हमारी समझ का श्रेय सीधे यातना को दे देते हैं। मेरा भी तब यही हाल था मानो अपनी पीड़ा से अचानक मैं सब कुछ समझने लगा। नहीं, यह पीड़ा नहीं बल्कि मेरी गहराइयों से फूटता जीवन का हर्ष था।

"लूवेन," मैंने पूछा, "कभी तेरी औरत रही है?"

"मेरा नहीं समझता," लूवेन ने उत्तर दिया।

"एक सूरज," मैं बोला।

और घटाने का इशारा किया। इसका मतलब एक दिन मैंने घटा

दिया और अर्थ निकला कल का। दो उँगलियों का मतलब - कल हम दो थे। एक उँगली दिखाकर अपनी ओर इशारा करता हूँ।

"आज मैं अकेला हूँ।"

और उस ओर दिखाकर जिधर स्टीमर गया था मैंने कहा:

"वहाँ औरत है!"

"मदामा!" हर्ष के साथ लूवेन बोला।

वह समझ गया: मेरी औरत का मतलब उसके लिए "मदामा" है। और उसने आँखें बन्द करके सिर लिटाकर दिखाया।

"मदामा सो-सो!"

मतलब उसकी मदामा मर चुकी है।

"यह तेरी बीवी थी?"

वह फिर मेरी बात नहीं समझा, मैंने फिर से उसे इशारों से समझाया, दो बड़े साथ सोते हैं और छोटे-छोटे पैदा होते हैं।

लूवेन समझ गया और उसका चेहरा खिल उठा: उसकी भाषा में पत्नी दादी कहलाती थी और मंगेतर - मदामा। उसने इशारों से बताया: आधे कद का आदमी, दूसरा उससे छोटा, तीसरा उससे एक सिर छोटा, एक और, इसके बाद एक और, और सबसे छोटा पीठ पर बँधा और पेट में एक और है..

"बहुत, बहुत और हाथ से काम करता!"

और यह दादी, उसके भाई की पत्नी थी, भाई उसका "सो-सो" हो गया था और उसकी अपनी मदामा भी "सो-सो" हो गयी थी और उसकी अपनी दादी "सो-सो" और लूवेन भाई की दादी के लिए काम करता था और कमाकर शंघाई भेजता था।

हमारी रात जारी थी। मैं नींद में बड़बड़ा रहा था:

"सो-सो मदामा!"

और लूवेन उत्तर में कह रहा था:

"जिओ-जिओ मदामा!"

शायद हुआ यही कि बाघ हमारे पास नहीं रुका बल्कि आगे चला गया। लाइबा शीघ्र ही फ़ान्ज़ा से निकल आयी और लूवेन के पास सिमटकर लेट गयी। स्वाभाविक ही, अलाव बुझ चुका था। पंखों की फड़फड़ाहट बन्द हो गयी, पर सुबह तक चाँदनी की बत्तियाँ उड़ती स्वयंवर रचाती रहीं और पेड़-पौधे नमी से सराबोर हवा को चूसकर तश्तरियों की तरह अपने चौड़े पत्तों में पानी भरते और भरकर उसे अनायास उंडेलते जा रहे थे..

भोर के साथ फिर से अपने चौड़े लबादों में चिट्टे निशानेबाज समुद्र से निकले और फिर से मुझ पर छर्रे बरसाने लगे।

यह रही वह चट्टान। अश्रु-ग्रंथियों की तरह उसकी असंख्य दरारों से नमी रिसकर बड़ी-बड़ी बूँदों में बदल जाती है और लगता है कि यह चट्टान सदा रोती रहती है। यह आदमी नहीं, पत्थर है; मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पत्थर कुछ महसूस नहीं कर सकता,

पर मैं तो आदमी ही ऐसा हूँ, मेरी आत्मा इतनी भावुक है कि मैं पत्थर से भी सहानुभूति रखे बिना नहीं रह सकता अगर मैं उसे बस अपनी आँखों से आदमी की तरह रोता देख लूँ। मैं फिर से इस चट्टान पर लेट गया, दिल मेरा धड़क रहा था पर मुझे लगता था कि यह चट्टान का दिल धड़क रहा है। बस आप कुछ मत कहिये, कुछ मत कहिये, मैं खुद जानता हूँ - यह तो मामूली चट्टान है! पर मुझे किसी मानव के साथ की कितनी ज़रूरत थी कि मैंने इस चट्टान को अपना मित्र मान लिया और दुनिया में केवल वही अकेली जानती है कि उसकी धड़कन से अपनी धड़कन मिलाकर मैं कितनी बार चिल्ला चुका हूँ: "शिकारी, ओ शिकारी, तूने क्यों उसे जाने दिया, क्यों नहीं पकड़े खुर!"

5

उस समय मैं कितना भोला-भाला था! तब मुझे विश्वास था कि अगर मैं अपनी मंगेतर को हिरणी की तरह पकड़ लेता तो बस जीवन की जड़ का प्रश्न हल हो गया होता। बच्चो मेरे, प्यारे मेरे नौजवानो, उस समय मैं भी आप ही की तरह अपनी जवानी के कारण उसको हद से ज़्यादा महत्व देता था जिसके बारे में अब आप कहते हैं स्वाभाविक ही तो है और जो मानो लगभग बिना आवरण के हो सकता है और जिसका बिना आवरण के कोई महत्व हो सकता है। या बकौल आपके, फूलों और गुलाबों के बिना भी प्रेम हो सकता है। हाँ, ये बेशक सही है कि हमारे जीवन की जड़ ज़मीन में है, इस पक्ष से हमारा प्रेम पशु-पक्षियों जैसा ही है, पर इसी वजह से डंठल और फूलों को भी ज़मीन में

गाड़ देना और रहस्यमय जड़ को उघाड़कर मानव जीवन के मूल को आवरण से वंचित करना उचित नहीं। खेद की बात है कि यह सब तब स्पष्ट होता है जब खतरा टल जाता है, पर नयी पीढ़ी बड़ों के अनुभव में सबसे कम विश्वास करती है और इस मामले में वह सबसे अधिक इच्छा लावारिस होने की रखती है। पर मैं सौभाग्यशाली था कि मेरे पास लूवेन था - सबसे स्नेही, शुभचिन्तक, और मैं यह तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि दुनिया में सबसे सभ्य पिता था वह। जी हाँ, अपने वनवास में मुझे सदा के लिए यह विश्वास हो गया कि सुवासित साबुन और टुथब्रश सभ्यता का तुच्छतम अंश मात्र है, उसका सार तो लोगों को समझने की कला और उनके आपसी रिश्ते में है। धीरे-धीरे मेरे लिए स्पष्ट हो गया कि लोगों का उपचार लूवेन के जीवन का ध्येय था - चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से वह कैसा था, इसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता पर मैंने अपनी आँखों से देखा कि सब लोग हँसमुख होकर उसके पास से लौटते और बहुत-से बाद में शुक्रिया अदा करने के लिए आते थे। टैगा प्रदेश के कोने-कोने से मान्ज़े1, चीनी शिकारी, बहेलिये, जिन्सेंग की जड़ के खोजी, खुनखूज़2, पाम से ढकी त्वचावाली औरतों और बच्चों के साथ विभिन्न कबीलों के आदिवासी, यायावर, देशनिकाले की सजा काटने वाले, पुनर्वासी उसके पास आते थे। टैगा प्रदेश में उसके ढेरों परिचित थे। लगता है कि जीवन की जड़ और मृगश्रंृग के बाद वह पैसों को सबसे प्रभावी दवा मानता था। उसे इस दवा की कभी कोई कमी नहीं रही: उसे बस अपने

लोगों में से किसी को कहने भर की देर थी और दवा आ जाती। एक बार भरी गर्मियों में जुसुखे में ऐसी बाढ़ आयी कि खेतों में खड़ी फसल बह गयी और पुनर्वासी बरबाद हो गये। तब लूवेन ने अपने मित्रों को सूचना भिजवायी और इसी चीनी सहायता की बदौलत रूसी लोग भुखमरी से बच गये। इस प्रकार यहीं मैं ज़िन्दगी भर के लिए सीख गया, किताबों से नहीं बल्कि उदाहरण से, कि संस्कृति कफ़ों और कफ़लिंकों में नहीं बल्कि सभी लोगों के बीच आत्मीयता के सम्बन्धों में है जो पैसों तक को दवा में बदल देती है। शुरु में लूवेन के मुँह से यह सुनकर कुछ हँसी-सी आती थी कि पैसे - दवा हैं, पर हमारे वन्य जीवन की परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि मैं स्वयं उन्हें दवा समझने लगा। जिन्सेंग, मृगश्रृंगों, और पैसों के अलावा गोराल मृग का खून, कस्तूरी, काकड़ की पूँछ, उल्लू का भेजा, ज़मीन और पेड़ों पर उगने वाली तरह-तरह की खुमियाँ, जड़ी-बूटियाँ भी उसके लिए दवाएँ थीं जिनमें बहुत-सी जानी-पहचानी थीं जैसे बबूने के फूल, पुदीना आदि। एक बार वृद्ध बड़े प्रेम से जड़ी-बूटियों को छाँट रहा था, उसके चेहरे को ताकते हुए मैंने साहस करके पूछ ही लिया:

1. मान्ज़ा - उस्सूरी प्रान्त में रहने वाला चीनी मूल का निवासी। - सं

2. खुनखूज़ - जरायम पेशा चीनियों का स्थानीय नाम। - सं

"लूवेन, तेरा बहुत समझता है। मुझे बता, मैं बीमार हूँ या

स्वस्थ?"

"सब लोग," लूवेन ने उत्तर दिया, "एक ही बार में स्वस्थ भी होते हैं और बीमार भी।"

"मुझे किस चीज़ की ज़रूरत है?" मैंने पूछा।

"हिरण के सींगों की?"

वह बड़ी देर तक हँसता रहा: मृगश्रृंग वह मर्दानगी की ताकत बढ़ाने के लिए देता है।

"जिन्सेंग से फायदा नहीं होगा मुझे?" मैंने पूछा।

लूवेन की हँसी बन्द हो गयी, वह बड़ी देर तक मुझे घूरता रहा पर इस बार कुछ नहीं बोला, परन्तु अगले दिन उसने कहा:

"तेरी जिन्सेंग बड़ी-बड़ी होती है, मेरा जल्दी तुझे दिखायेगा।"

लूवेन कभी भी यूँ ही नहीं कहता था और मैं इस औषध का चूर्ण ही नहीं बल्कि टैगा में उगने वाली इस जड़ को अन्ततः अपनी आँखों से देखने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। और एक बार बहुत रात गये लाइबा भौंकती हुई खड्ड की गहराई की ओर दौड़ पड़ी। लूवेन उसके पीछे-पीछे फ़ान्ज़ा से निकला और मैं भी उसके पीछे रायफल उठाकर बाहर निकला।

अँधेरे से लाइबा के साथ प्रकट होते वह बोला:

"बन्दूक नहीं चाहिए, हमारा लोग है।"

शीघ्र ही छः ख़ूब अच्छी तरह हथियारबन्द चीनी हमारे पास

आये, ये रायफलों और बड़ी-बड़ी कटारों से लैस सुन्दर मंचूरियाई थे।

'हमारा लोग!" लूवेन ने मुझसे फिर कहा और मेरी ओर इशारा करके उसने चीनी में उनसे भी मेरे बारे में शायद यही कहा होगा: "हमारा लोग"।

मंचूरियाइयों ने झुककर मेरा अभिवादन किया, और वे बड़े कद्दावर लोग झुक-झुककर बारी-बारी से हमारे तंग घर में घुस गये। अन्दर वे सब घेरा बनाकर बैठ गये, फ़र्श पर उन्होंने कुछ रखा और उसके साथ कुछ करके सबके सब फौरन जड़ होकर अवलोकन में तल्लीन हो गये।

"लूवेन," मैं धीरे से बोला, "क्या मैं भी देख सकता हूँ?"

लूवेन ने फिर से चीनी में कहा हमारा लोग, सबके सब मंचूरियाई असीम आदर के साथ मेरी ओर मुड़े और मेरे लिए स्थान बनाते हुए मुझे भी साथ बैठकर उनकी तरह कुछ देखने का न्यौता देने लगे।

बस तभी मैंने पहली बार जीवन की जड़, जिन्सेंग देखी, इतनी विरली और मूल्यवान कि उसे ले जाने का जिम्मा छः शक्तिशाली और अच्छी तरह सशस्त्र नौजवानों को सौंपा गया। देवदार की छाल से बनी छोटी-सी पेटिका में काली मिट्टी पर पीले रंग की छोटी-सी जड़ रखी थी, देखने में वह मामूली अजमोद की जड़ लगती थी। मुझे स्थान देकर सब चीनी फिर से मूक अवलोकन में तल्लीन हो गये और मैं भी ध्यान से देखते

हुए, आश्चर्य के साथ इस जड़ में मानव आकृति की रुपरेखा को पहचान रहा था: फैली टाँगें, हाथ भी स्पष्ट रुप से दिख रहे थे, गर्दन, उसके ऊपर टिका सिर और सिर पर चोटी तक थी, हाथों और पाँवों पर लम्बी-लम्बी उँगलियाँ-सी थीं। पर मैं मानव देह जैसी जड़ पर इतना मंत्रमुग्ध न था - जड़ों की तो माया ही ऐसी होती है कि उनमें न जाने कैसी-कैसी आकृतियाँ देखी जा सकती हैं। मेरी चेतना पर जीवन की जड़ के अवलोकन में तल्लीन इन सात मानवों के मूक प्रभाव ने ही मेरा ध्यान जड़ के अवलोकन पर केन्द्रित कर दिया था। ये सात जीते-जागते इंसान पिछले हज़ार सालों में माटी में विलीन हुए करोड़ों लोगों में अन्तिम थे, ये सब, लाखों-करोड़ों इन्हीं सात अन्तिम जीवितों की तरह जीवन की जड़ में आस्था रखते थे, बहुतों ने शायद इसी भक्तिभाव के साथ उसका अवलोकन किया होगा, बहुतों ने उसका पेय पिया होगा। मैं आस्था के इस सम्मोहन के समक्ष टिक न सका और वैसे ही, जैसे सागर के तट पर, मैंने अपने को किसी विशाल ग्रहीय काल की इच्छा पर छोड़ दिया था, अब ठीक उसी तरह अलग-अलग इंसानी जिन्दगियाँ मेरे लिए लहरों के समान थीं और वे मुझ जीवित की ओर वैसे ही दौड़ रही थीं जैसे तट की ओर और मानो उस जड़ की शक्ति को स्वयं अपने अस्तित्व से नहीं जो खुद ही शीघ्र मिट जायेगा बल्कि ग्रहीय, शायद इससे भी सुदूर काल के सन्दर्भ में समझने का अनुरोध कर रही थीं। बाद में मुझे वैज्ञानिक पुस्तकों से पता चला कि जिन्सेंग - एरालिया परिवार की अवशिष्ट वनस्पति है, कि पृथ्वी

के तृतीय कल्प में वह जिस वनस्पति और जन्तु जगत में रहती थी वह अब पहचान के परे बदल गया है पर इस ज्ञान ने, जैसा कि अक्सर होता है, मेरे मन में लोगों की आस्था के सम्मोहन से प्रणीत भावों को निःस्पन्द नहीं किया। अपने पूरे ज्ञान के बावजूद पहले की तरह अब भी इस जड़ी का भाग्य मुझे आन्दोलित करता है जो दसियों सहस्राब्दियों के काल में तपते रेत से लेकर हिमानी मरुस्थल तक के परिवेश में रही और अन्ततः उसने शंकुधारी वनों तथा उनमें विचारते भालुओं का साथ पाया..

बड़ी देर तक अवलोकन करने के बाद अचानक सबके सब मंचूरियाई एक साथ बोलने लगे, जहाँ तक मैं समझा, वे इस जड़ की संरचना की सूक्ष्मतम बारीकियों पर बहस कर रहे थे। क्या पता इस पर बहस कर रहे हों कि फलाँ-फलाँ गाँठ नर जड़ के लिए उचित है और उसको शोभा देती है, पर मादा जड़ को उल्टे वह शोभा नहीं देती, बेहतर न हो कि अगर हम सावधानी से उसे काट दें। ऐसे ढेरों प्रश्न हो सकते थे, बहुत से अचानक खड़े हो जाते जिनसे मतभेद पैदा हो जाता और प्रचण्ड बहस छिड़ जाती। पर हरेक ऐसे मतभेद को लूवेन के अन्त में मुस्कराता हुआ सुलझा देता और सब उससे ज़रूर सहमत हो जाते। लूवेन अब तैश में नहीं आ रहा था, बल्कि वह शान्त था, अपने विषय में किसी भी पण्डित की तरह उसका भी बोलबाला था। लूवेन के निर्णय को सभी निर्विवाद रूप से मान रहे थे। जब उनका आवेश बिल्कुल ठण्डा हो गया और शान्त विचार-विमर्श शुरु

हुआ मैंने साहस जुटाकर लूवेन से पूछ ही डाला कि वे इस समय किस विषय में बातें कर रहे हैं।

"बहुत-बहुत दवा," लूवेन ने जवाब दिया।

मतलब, इस समय बात पैसों की हो रही थी, इतनी विरली जड़ का दाम क्या हो सकता है। लूवेन ने बताया कि जिन्सेंग के एक ग़रीब खोजी को यह जड़ मिली थी और उसकी हत्या हो गयी। इस खजाने को एक उचक ने, मतलब उचक्के ने हड़प लिया और एक सौद, मतलब, सौदागर चीन से सीधा वहाँ आया, बहुत सारी दवा दी और इन लोगों की जड़ ले जाने के लिए भाड़े पर लिया। पर बेशक इस सौद ने बहुत कम दाम दिया, और जड़ का दाम कितना होगा - कोई नहीं जानता। हर सौद दूसरे से खरीदते वक़्त ज़्यादा देगा और बेचते वक़्त ज़्यादा से ज़्यादा लेगा क्योंकि हरसौद उचक होता है।

"अन्त क्या होगा इसका?" मैंने पूछा।

"नहीं होगा खतम," लूवेन ने उत्तर दिया। "ऐसी जड़ घूमो-घूमो माँगता। ऐसी जड़ में बहुत-बहुत दवा होता। छोटा लोग जिसे वह मिली सो-सो करता और बड़ा लोग घूमो-घूमो।"

बहुमूल्य घूमो-जड़ को लूवेन की हिफ़ाज़त में सौंपकर मंचूरियाई पत्थर के ठण्डे फ़र्श पर लेट गये और, शायद पौ फटने से पहले ही चले गये।

6

बड़े अजीब-से शोर ने मुझे जगा दिया, वह खराब मौसम में झँकारते टेलीग्राफ के खम्बे के शोर से बहुत मिलता-जुलता था। पर यहाँ जंगल में टेलीग्राफ का खम्बा आया कहाँ से? आँखें खोलने पर लूवेन दिखायी दिया। वह भी कान लगाकर कुछ सुन रहा था।

"चल, चल!" वह बोला, "तेरा जिन्सेंग उगना माँगता, मेरा तुझे दिखायेगा।"

वह जिन्सेंग के चीनी खोजियों की तरह नीले कपड़े पहने था, ओस की नमी से रक्षा के लिए आगे तेल में भीगा पेशबन्द बँधा था और पीछे - बिज्जू की खाल ताकि बरसात के दिन ज़मीन पर बैठकर आराम किया जा सके, सिर पर बर्च की छाल की तिकोनी टोपी थी, हाथ में लम्बी लाठी थी, ज़मीन पर पड़ी पत्तियों और घास को हटाकर देखने के लिए, कमर पर कटार, जड़ खोदने के लिए हड्डी की बनी कुरेदनी, चकमक पत्थर की थैली लटकी थी। नीले रंग के गाढ़े ने, जिससे क़मीज़ और पतलून सिली थी मुझे उन भयंकर लोगों की याद दिला दी जो ऐसे नीले चीनी खोजियों के शिकार को फ़ेजेंटों का शिकार कहते हैं और सफ़ेद कपड़ोंवाले कोरियनों के शिकार को राजहंसों का। "यह क्या है?" मैंने उस ओर इशारा करके लूवेन से पूछा जहाँ से खराब मौसम में झँकारते टेलीग्राफ के खम्बे जैसी गुंजार आ रही थी।

"लड़ाई!" लूवेन ने झट से उत्तर दिया।

हमने आग जलाई। मैं ऊपर चढ़ा और वहाँ कूड़े-करकट में मुझे लड़ाई का कारण मिल गया। वहाँ एक बड़ा पतंगा फस गया था और उसके तेज़ी से फड़फड़ाते पंख टेलीग्राफ के खम्बे जैसी गुंजार कर रहे थे। मैंने चीनी को यह दिखाया पर उसने इसे कोई महत्व न दिया और फिर से बोला:

"ऐसा गुंज-गुंज लड़ाई का शकुन है, लड़ाई चलने वाली है।"

मेरी समझ में किन्हीं पुरानी, शायद कभी प्रचलित आस्थाओं के जड़ अवशेषों के रूप में अन्धविश्वास आदमी को इससे अधिक बुरा नहीं बनाते, जितना कि औसत सभ्यता की विभिन्न चीज़ों की अदम्य आदत कुछेक को बनाती है। अंधविश्वासों और किसी खास ब्राण्ड की क्रीम या किसी खास साइज के काग़ज़ के उपयोग की आदतों के बावजूद भी आदमी सभ्य सजीव रह सकता है। पर इस बार लूवेन के अन्धविश्वास से मुझे काफ़ी दर्द हुआ। मैं सोचने लगा: "लड़ाई के बारे में भला अखबार और हमारी परिस्थितियों में पुनर्वासियों द्वारा फैलायी जाने वाली अफवाहें तक क्या प्रकृति के किन्हीं शकुनों से हज़ार गुना सही नहीं होती? और भला पृथ्वी की अक्षय उर्वर क्षमता के बारे में रात के अलाव के पास पतंगों के परों की फड़फड़ाहट अन्धविश्वासी धारणा से क्या कम बताती है?" अन्धविश्वास के प्रति इस बार भी अपनी विशेष घृणा के कारणों का गहन मननचिन्तन करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जीवन की जड़ के बारे में करोड़ों की एक जनता की कई हज़ार सालों से प्रचलित किंवदन्ती ने मुझे इतना मोह लिया था कि मैं उसे अपने

निजी अनुभव की उस कसौटी पर जाँचने में कुछ-कुछ डर रहा था जिसका मैं हर किंवदन्ती के सम्बन्ध में बेधड़क उपयोग करता हूँ।

अब यह डर अंधविश्वासों के तनिक-से सम्पर्क से झुँझलाहट में बदल रहा था।

हम पूर्ण अन्धकार में ही फ़ान्ज़ा से खड्ड के रास्ते समुद्र की ओर चल पड़े। अगर दिन निकल भी आता तब भी घने कोहरे के कारण हम कुछ नहीं देख पाते जो गर्मियों में लगभग हमेशा यहाँ छाया रहता है। एकमात्र रोशनी, वह भी नाक के ऐन पास उड़ते जुगनुओं की बत्तियाँ थीं। और देखिये वंशागत अन्धविश्वासों की शक्ति को: जुगनुओं को उड़ते देखकर मुझे रणभूमि में खेत रहे ढेरों लोगों की याद आ गयी। मुझे याद आया कि कैसे वे तड़पकर मरते हुए किसी दूसरे लोक में जा रहे थे। "क्या ये वे ही तो नहीं हैं?" मैं वहशियों की तरह अपने से पूछ रहा था। और उनमें से कुछेक को याद करते हुए मैं अपने मन में सुरक्षित उस वेदना को पाता जो मैंने उनसे अपनी संवेदना के माध्यम से ले ली और इसका परिणाम यह हुआ कि वे तो चले गये और जुगनू बनकर मजे से उड़ रहे हैं और मैं उनकी वेदना के साथ यहीं रह गया, क्या पता अब किन्हीं मामलों में मैं अचेतन रूप से इस वेदना से ही अभिप्रेत होता होऊँ जिसे मैंने युद्ध में अपने मित्रों को खोते समय अपने में संजो लिया था। पर लूवेन की तो नेकी ही ऐसी थी, यह संयोग न था कि उड़ते जुगनुओं को देखकर वह मानो किसी बात का अनुमान लगाने लगा और जब वह हमेशा

के लिए इसे समझ गया, तो उसने यह सारी वेदना अपने में भर ली और बेहतर जीवन में अपनी आस्था को जीवन की जड़ जिन्सेंग की शक्ति से जोड़कर उसने अपने को रोगियों की सहायता के ध्येय को समर्पित कर दिया।

हाँ, तो मैं उड़ते कीटों को देखते हुए अपने ही ढंग से जीवन की जड़ के बारे में किंवदन्ती को मृत और आधुनिक जीवन में हानिकारक उन अन्धविश्वासों से अलग और साफ़ करने का प्रयास कर रहा था जिन्हें सुदूर अतीत हम में छोड़ गया है। उड़ते जुगनूं अचानक अगोचर-से हो गये पर लगता था कि वे ही अपने पीछे यह मद्धिम प्रकाश छोड़ गये हैं और इस प्रकाश में हमें नीचे की विभिन्न चीज़ें दिखायी देने लगीं, वैसे नहीं जब खुली सुबह को पौ फटती है, तब पहले आकाश चमकता है और इसके काफ़ी देर बाद ही ज़मीन की चीज़ें़ ऊपर से पड़ते प्रकाश से आलोकित होकर दिखायी देती हैं। हम समुद्र के बिल्कुल पास पहाड़ों में थे और कोहरे में चट्टानें हमें काली आकृतियों जैसी लग रही थीं। उनको देखकर मुझे ऐसा स्पष्ट आभास हुआ मानो यह पुष्प-मृग नारी का रूप धारण कर रहा हो और लूवेन भी शायद अपनी किसी मनोवांछित चीज़ के दर्शन कर रहा था। हमें एक-दूसरे को इसके विषय में बताने की आवश्यकता न थी, इसलिए हम दोनों चुपचाप, एक-दूसरे को तनिक भी किसी संकोच में डाले बिना चल रहे थे। भोर की बेला में पैनी कँपकँपी के साथ पूरे बदन में ठण्ड दौड़ गयी और भोर की ठण्ड की एक सामान्य अनुभूति के फलस्वरूप संसार में घुल गये अपने तन के

माध्यम से मुझे लगने लगा मानो सारी प्रकृति अब निरवस्त्र होकर हाथ-मुँह धो रही है। मुझे लगा कि लूवेन भी यही कहना चाहता था जब उसने मुझे अचानक रोका और हाथों से ऐसी क्रिया की मानो मुँह धो रहा हो फिर उसने हाथ फैलाकर संकेत दिया "सर्वत्र, सर्वत्र!" और बोला:

"अच्चा, अच्चा, भौत अच्चा!"

शीघ्र ही साफ़ हो गया कि वह इस तरह मौसम की भविष्यवाणी कर रहा था: प्रशान्त महासागर के तटीय प्रदेश में अक्सर ऐसा होता है कि घने से घना कोहरा भी अचानक अगोचर हो जाता है और हवा जल-वाष्प से सराबोर होने के बावजूद भी एकदम पारदर्शी हो जाती है। हमें ऊँचे तट की एक पगडण्डी पर सूर्योदय के दर्शन हुए, वहाँ किन्हीं झाड़ियों के घने झुरमुट से कभी-कभी, गर्दन पर सफ़ेद छल्लेवाले सुन्दर मंगोलियाई फ़ेज़ेंट निकलकर उड़ रहे थे, और फुर्र से उड़ते हुए न जाने क्यों वे मुड़कर हमारी ओर देखते और अपनी भाषा में कहते: को-को-को... शीघ्र ही मैं समझ गया कि ये झाड़ियाँ क्यों इतनी नीची और बेहद घनी थीं। तूफ़ानों के साथ मिलकर समुद्र ने सदियों तक चट्टान के साथ संघर्ष किया और अन्ततः उसे जीवन के बीज बोने में सफलता मिल ही गयी : चट्टान की दरारों में विभिन्न फूल और बाद में नन्हे बलूत भी उग आये। समुद्र यहाँ जीवन तो ले आया पर शुरु में यह जीवन भी क्या जीवन था! वे बलूत जो समुद्र के बिल्कुल निकट थे, थोड़ा-सा भी सिर उठाने की सोचने तक का साहस न कर पाते थे - वे लेटे-लेटे ही उग रहे थे, उनके

पतले-पतले तने रेंगते हुए सागर से दूर भाग रहे थे और वे देखने में बिल्कुल सीधे कढ़े बालों की तरह लग रहे थे। पर हम समुद्र से जितनी दूर हटते जाते नन्हें बलूतों के सिर भी उतने ही उठते जाते, पर यह भी एक निश्चित हद तक: आदम कद से ऊपर वे सूख जाते थे और नीचे की टहनियाँ गुँथकर ऐसा घना झुरमुट बना डालतीं जो उस काल में फे़ज़टों के रहने के लिए अत्यधिक उचित था जब नयी पीढ़ी को विभिन्न हिंस्र जीवों की नज़र से छिपाकर रखना होता था।

सागर तट से टैगा वन की गहराई में जाते समय उसने फौरन हमारा साथ नहीं छोड़ा : हम कभी उतरते तो कभी फिर से ऊपर चढ़ते चल रहे थे, सूरज कभी आँखों से ओझल हो जाता तो कभी फिर से दर्शन देता और हमें लगता कि मानो नया सूर्योदय देख रहे हों। ऐसा भी हो रहा था कि खाड़ियों, शिलाखण्डों के ढेरों, जलडमरूमध्यों से अटा सागर तट सूरज को नयी-नयी आड़ें प्रदान कर रहा था, इस कारण हर नये सूर्योदय में हमारे सामने तरह-तरह की आकृतियाँ प्रकट हो रही थीं। अन्तिम चट्टान पर, जहाँ से दूर-दूर तक फैला महासागर दिखायी देता था, बड़े विचित्र चीड़ वृक्ष खड़े थे, देखने में वे जापानी छतरियों और भूमध्य सागरीय पाइन वृक्षों जैसे लग रहे थे। वे इतने झीने थे कि लगता था कि उनका झुरमुट कितना ही घना क्यों न हो पर सागर उसके बीच से साफ़-साफ़ दिखायी देता रहेगा। वहाँ, उस अन्तिम चट्टान से इन पाइनों के बीच से, हम अपनी नंगी आँखों से सागर में ढेरों समुद्री जीवों के सिर देख सकते थे।

जब हम सागर से विदा लेकर गहरे खड्ड में उतरे तो अन्धियारे टैगा वन में भी अपने शिकार को दबोचे पगडण्डी को पार करती चींटी को साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। हम काकड़ों, हिरणों, गोराल मृगों और बकरियों के खुरों से कटी, हर प्रकार की वनस्पति से वंचित पगडण्डी पर चल रहे थे, जिसे मानव ने अपने चलने लायक बना डाला था। उस पगडण्डी से हम गहरे कन्दर में उतर गये जिसमें अनाम सोता पत्थरों के ढेरों में निरन्तर अगोचर होता और वहाँ से अपनी भूमिगत बकबक से अपना आभास दिलाता बह रहा था। यहाँ पत्थरों पर मुश्किल से दिखती पगडण्डी कभी सोते के इस पार जाती तो कभी उस पार। पर हमने इस भटकी पगडण्डी को छोड़ दिया और जलधारा के प्रवाह में एक कुण्ड से दूसरे तक अक्सर एक पत्थर से दूसरे पर कूदते चल रहे थे। लूवेन अक्सर मुझे कभी मखमली पेड़ की छाल पर बने निशान को, कभी कंटीली एरालिया की टूटी टहनी को, तो कभी पोपलर के कोटर में ठूँसे काई के टुकड़े को दिखाता चल रहा था और उन्हें याद करने का अनुरोध कर रहा था। ये सभी निशान टैगा वन में संयोग से आये किन्हीं पथिकों, बहेलियों, शिकारियों आदि के लिए नहीं थे - यह सब जीवन की जड़ के अन्य खोजियों के लिए संकेत था: यह रास्ता तलाशा जा चुका है और उन्हें यहाँ बेकार श्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। पर यही रास्ता मेरी अपनी जीवन की जड़ की ओर ले जाता था और लूवेन मुझे सभी निशानियाँ दिखा रहा था ताकि मैं, जिसे जड़ की खोज का अनुभव न था, बाद में खुद,

उसकी सहायता के बिना ढूँढ़ लूँ।

"अगर तूफ़ान काई के इस टुकड़े को कोटर से निकाल दे या वसन्त की बाढ़ निशान वाले पेड़ को उखाड़कर बहा ले जाये या यह चट्टानी दीवार टूटकर हमारा रास्ता ही बन्द कर दे तो क्या करना चाहिए?" मैंने उससे पूछा।

"सिर में साफ़ ईमान होना माँगता," लूवेन ने उत्तर दिया।

मैं समझ गया कि उसका तात्पर्य बुद्धिमानी से है, मैंने कन्दर के दोनों ओर दीवारों की तरह खड़ी चट्टानों, पेड़-पौधों की ओर इशारा किया; सब तबाह हो जायेंगे तो बुद्धिमानी भी कुछ मदद नहीं कर सकेगी।

"सिर मारा गया, मारा गया सिर!" मैंने कहा।

"सिर नहीं होना माँगता," लूवेन बोला, "सिर मारा गया, यहाँ होना माँगता सिर।"

उसने दिल की ओर इशारा किया और मैं समझ गयाकि जीवन की जड़ की खोज के लिए निष्कपट मन के साथ जाना चाहिए और कभी भी पीछे मुड़कर उस ओर नहीं देखना चाहिए जहाँ सब तहस-नहस हो गया हो। अगर मन साफ़ है तो कोई भी बाधा राह नहीं रोक सकती।

धीरे-धीरे कन्दर की चट्टानी दीवारों की ऊँचाई कम होती गयी और हम दलदलवाले छोटे-से गर्त में पहुँच गये जहाँ से चट्टानों में इस गहरे कन्दर की रचना करने वाला सोता फूट रहा था।

यहाँ से, चौड़ी घाटी में उतरनेवाले दर्रे से भव्य देवदार शुरु हो गये थे, वे इतने बिखरे थे और उनकी नयी पौध इतनी नीची थी कि उनके तनों के बीच से बहुत दूर तक नीचे देखा जा सकता था और धूप के चकत्तों, झिलमिलाती छायाकृतियों, पंखों की फिसलती परछाइयों को देखकर इस गाती घाटी के किसी विशेष समृद्ध जीवन का अनुमान लगाया जा सकता था। विभिन्न वृक्षों के बीच नन्हे-नन्हे विविध पक्षी चहचहा रहे थे; यहाँ पोपलर के ऐसे पेड़ थे जिनकी आयु तीन सौ वर्ष से कम न होगी, कभी-कभी जर्जर, झुके, गठीले, कोटरोंवाले पेड़ मिलते, जिनमें हमेशा भालू जाड़ा बिताया करते थे; वहाँ विशाल लिण्डन, ऊँचे तनोंवाले एल्म और कार्क वृक्ष भी थे।

झाड़-झंखाड़ के समृद्ध जीवन के लिए पर्याप्त धूप प्रदान करते विरल भीमकाय वृक्षोंवाली गाती घाटी इतनी सुन्दर थी कि जीवन की जड़ की फलप्रद खोज के लिए आवश्यक निर्मल मन का विचार अनायास ही आ रहा था। चलते-चलते हमने शीघ्र ही गाती घाटी को उत्तर-पश्चिमी दिशा में पार किया और अचानक हमारे सामने किसी प्राचीन नदी के, दूसरी भिन्न वनस्पति से ढकी घाटी में उतरते सीढ़ीनुमा पाट का दृश्य खुला। यहाँ काले पोपलरों के नाटे तनों के बीच श्याम भुर्ज, फ़र, सिल्वर फ़र, चमखरक, छोटे पत्तोंवाले मैपिल आदि वृक्ष थे और जब हम लता-बेलों से गुँथे इस वन से आगे गये तो किसी अज्ञात जलधारा के तट पर वनस्पति तीसरी बार बदल गयी। यहाँ अखरोट के चौड़े पत्तोंवाले वृक्षों के बीच बस कहीं-कहीं देवदार

ही थे। बड़े-बड़े विरल वृक्ष झड़बेरी, एल्डर, जामन, जंगली सेब के अत्यधिक घने झुरमुटों में डूबे हुए थे जिनकी छाया में लहलहाती छायाप्रिय घास के बीच ही कहीं जीवन की जड़ जिन्सेंग को खोजना था।

लूवेन और मैंने यहाँ विश्राम किया, हम बड़ी देर तक मौन रहे। हमारे दीर्घ मौन की नीरवता में क्या था? टिड्डों, झींगुरों आदि अन्य संगीतकारों की असंख्य, अपूर्व, अकल्पनीय, विपुल राशि अपने वाद्यों को झँकारते इस नीरवता का समाँ बाँध रही थी : अगर मन में स्वच्छन्द और शान्त चिन्तन-मनन के लिए सन्तुलन हो तो उनका संगीत तनिक भी नहीं सुनायी देता। पर क्या पता ये सब, असंख्य संगीतकार अपने संगीत से ही ऐसा करते हों कि आदमी स्वयं अपने ही ढंग से उसमें भाग लेता है, उन पर ध्यान देना बन्द कर देता है और इसके फलस्वरूप कोई वास्तविक, असाधारण और सजीव रचनात्मक नीरवता छा जाती हैं यहीं कहीं पास ही में सोता बह रहा था, वह भी लगता था, मौन था; पर अगर किसी आकस्मिक याद से शान्त विचारों का क्रम टूट गया और किसी प्रियजन को कुछ कहने की असम्भव इच्छा अत्यन्त दबी आह के रूप में फूट पड़ी तो शायद, पत्थरों के बीच दौड़ते इस सोते से झट से फूट पड़ेगा: "बोल-बोल-बोल!" और तब ये सब अश्रव्य संगीतकार, कोटि-कोटि, असंख्य संगीतकार, सबके सब अचानक सोते की संगत करने लगते हैं: "बोल-बोल-बोल!"

लूवेन और मैं किसी पक्षी के बारे में बातें करने लगे जो जीवन

की जड़ जिन्सेंग का पहरा देती है। मेरा अनुमान है कि लूवेन इस प्रदेश में रहने वाली तीन क़िस्मों की कोयलों में से एक के बारे में बता रहा था: मानो यह छोटी-सी काले रंग की कोयल जीवन की जड़ का पहरा देती है और उसे केवल वही देख सकता है जिसने अपनी आँखों से जीवन की जड़ को देखते ही तत्क्षण अपनी छड़ी उसके पास गाड़ दी। ऐसा अकसर होता है, अक्सर क्या, जड़ के खोजियों के साथ मानो हमेशा यही होता है कि अभी-अभी खजाना दिखायी दिया - और देखते ही देखते ग़ायब हो गया: जिन्सेंग पल भर में किसी दूसरी वनस्पति या जीव का रुप ले लेती है। पर अगर तुमने उसे देखते ही अपनी छड़ी गाड़ दी तो वह कहीं नहीं जायेगी। पर हमें अब किसी चिन्ता की ज़रूरत नहीं थी: यह जड़ कोई बीस साल पहले खोजी जा चुकी थी, तब वह बेहद युवा थी और उसे दस वर्ष के लिये आगे उगने के वास्ते छोड़ दिया गया था। पर हुआ यह कि इस स्थान से गुजरते हुए काकड़ का खुर जिन्सेंग पर पड़ गया और इस कारण वह जैसी की तैसी रह गयी। हाल ही में वह फिर से बढ़ने लगी और कोई पन्द्रह साल बाद तैयार हो जायेगी।

"अभी तू दौड़-भाग," लूवेन बोला, "तभी समझेगा।"

हम चुप हो गये। इस सन्नाटे में मैं इसकी कल्पना करने का प्रयास कर रहा था कि पन्द्रह साल बाद मेरे साथ क्या होगा और मेरी कल्पना में मिलन का दृश्य आया। आ़खिर वियोग के पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे, हम मुश्किल से, डरते-डरते एक दूसरे को पहचान पाये, हम खड़े हैं, खोये-खोये से देख रहे हैं और एक

दूसरे को कुछ कह न पा रहे हैं।

आह! कितना वेदनादायी था यह! पर जैसे ही मुँह से आह निकली सोते से अचानक सुनायी पड़ा:

"बोल-बोल-बोल!"

और इसके बाद तो सभी संगीतकार और गाती घाटी के सभी प्राणी गाने-बजाने लगे, सम्पूर्ण नीरवता झंकारकर पुकारने लगी:

‘बोल-बोल-बोल!"

"पन्द्रह साल बाद तू जवान आदमी और तेरा मदामा जवान होना माँगता," लूवेन बोला।

इसके बाद हम उठे और सोते की धारा के ऊपर झुके जंगली सेब के तने पर चढ़कर दूसरे किनारे पर चले गये और वहाँ शीघ्र ही विभिन्न जड़ी-बूटियों के बीच लूवेन घुटनों के बल बैठ गया और हाथ जोड़कर बड़ी देर तक ऐसे ही बैठा रहा। यह कल्पना करके कि मैं सृजनात्मक शक्तियों के किसी óोत के पास खड़ा हूँ मैं इतना उद्विग्न था कि अनायास ही उसके पास बैठ गया। दिल की धड़कन की ताल में स्पन्दन करते मेरे विचार बिल्कुल स्वच्छ थे और दिल मेरा नीरवता के संगीत की लय पर धड़क रहा था। पर शीघ्र ही वह क्षण आ गया: लूवेन ने घास हटायी - और मैंने देखा... छोटे-से पतले डण्ठल पर आदमी की खुली हथेली की आकृति जैसी कुछ पत्तियाँ ऐसी कोमल वनस्पति के लिये भांडे खुरवाला काकड़ ही नहीं बल्कि चींटी तक ख़तरनाक थी, अगर

उसे किसी कारण इसकी आवश्यकता होती तो वह कुछ ही देर में इस जीवन को बरसों के लिये रोक सकती थी। इस वनस्पति और मेरे जीवन को पन्द्रह वर्षों में कितने ही संयोगों का सामना करना पड़ सकता था!

चलते समय लूवेन ने मुझे देवदार के तने पर बना निशान दिखाया; इस देवदार से जड़ तक ठीक एक हाथ की दूरी थी और दूसरी ओर से, मखमली पेड़ से भी एक हाथ की दूरी थी, तीसरी ओर बलूत के तने पर निशान बना था और चौथी ओर से कीकर के तने पर।

7

इस बार मैं सींगों के शिकार में अपना भाग्य आजमाने के लिये टैगा वन में गया। उस मौसम में नर चीतलों या काकड़ों का शिकार जब उनके सींग - मृगश्रृंग खून से संचारित होते हैं, अभी अस्थिकृत नहीं हुए होते, सींगों का शिकार कहलाता है। इस शिकार से बड़ी कमाई होती है, कई सींगों का दाम स्वर्ण मुद्रा में एक हज़ार येन से भी अधिक होता है। उस मौसम में जब शिकारी सींगों का शिकार शुरु करते हैं मादाएँ पहाड़ों की तलहटियों में हिरनौटे जनती हैं, पर नर कभी-कभार ही आते हैं, वे झाड़ियों में छिप-छिपकर उत्तरी ढलानों पर ही रहते हैं। अक्सर वे बड़ी देर तक मूर्ति बनकर खड़े रहते हैं शायद इस डर से कि कहीं हल्के से हल्के स्पर्श तक के लिए संवदेनशील श्रृंगों को चोट न लग जाये। धुँधली पहाड़ी जिसकी ओर तब मैं जा

रहा था, लगभग सारी की सारी दिखायी दे रही थी, बस उसकी काली चोटी ही धुंध में तैर रही थी। इस पहाड़ी को तीन ओर से समुद्र ने घेर रखा था, वह ठण्डे ज्वालामुखी से काफ़ी मिलती-जुलती थी, शायद वह कुछ समय पहले तक रही भी हो: खाड़ी के तट पर मुझे कई बार झाँवे के टुकड़े मिल चुके थे। निःसन्देह पहाड़ी काफ़ी कटी हुई थी, चारों ओर से उसकी ढलानों में गहरे खड्ड और कन्दर थे। इन कन्दरों में, बेशक, जीव-जन्तु भी और विशेष, अवशिष्ट वनस्पति भी शरण पाते थे, शिकारियों के लिए मूल्यवान ये सभी कन्दर ऊपर जाकर लगभग बिन्दु पर जुड़े हुए थे और सारी पहाड़ी इन जीव-जन्तुओं और वनस्पति से समृद्ध कन्दरों की गठरी ही थी। अब मैं समुद्र तट पर दक्षिण-पश्चिम में जा रहा था जहाँ धुँधली पहाड़ी के तीन सुन्दरतम कन्दरों - नील, वर्जित और व्याघ्र कन्दर के मुहाने थे। उनमें से हरेक की तली पर, ऊपर से नीचे तक उनकी रचना करने वाले नाले बहते थे। नीचे नाले के किनारे-किनारे, समुद्री दक्षिणी पवन के अलावा सभी हवाओं से बचाने वाली ओट में प्राचीन युगों की अवशिष्ट वनस्पतियाँ सुरक्षित थीं और ऊपर कन्दरों के कगारों पर चंचल पाइन वृक्ष तूफ़ानों से अठखेलियाँ करते थे। समुद्र तट से मैं नील कन्दर के बायें किनारे-किनारे धुँधली पहाड़ी की चोटी पर चढ़कर धीरे-धीरे कटक पर चल रहा था बाघों और तेंदुओं की तरह ताकि ऊपर से चारों ओर सब कुछ दिखायी दे। नील और वर्जित कन्दरों में मुझे जहाँ-तहाँ हिरण दिखायी दे रहे थे, ये दो-दो, तीन-तीन के समूहों में हिरणियाँ थीं अपने छौनों के साथ। कभी-

कभी उनके बीच सींकों जैसे पतले सींगोंवाला हिरनौटा भी दिखायी पड़ता। अचानक उस कन्दर की गहराई से, जिसे बाद में मैंने व्याघ्र कन्दर का नाम दे डाला, मुझे चीत्कार, कराह और फूत्कार सुनायी पड़े। मैं बड़ी तेजी से बिखरे पत्थरों पर दौड़ता हुआ उधर गया, मैं कोशिश कर रहा था कि पत्थर हिलें या गिरें नहीं। छलाँग लगाकर मैं झाड़ियों के बीच पहुँच गया और चुपके-चुपके आगे बढ़ने लगा। शीघ्र ही मुझे झाड़ियों के बीच से कन्दर के दूसरे किनारे पर कोई पीला-सा जानवर दिखायी पड़ा। उसे मेरी भनक पड़ गयी और अनिच्छा, आलस्य के साथ कुलाँचें भरता वह ऊपर की ओर दौड़ने लगा। कभी वह दिखायी पड़ता तो कभी बलूत की झाड़ियों में ओझल हो जाता। मैं बाट जोह रहा था कि वह शैल प्रपात पर पहुँचकर पूरा सामने आये पर वहाँ घास में लेट गया जैसा कि बिल्ली के परिवार के हिंस्र पशुओं की आदत है। पत्थरों के पीछे से केवल आँखें ही दिखायी दे रही थीं। इतनी दूरी पर यह लक्ष्य बन्दूक की मक्खी से छोटा था इसलिए उसे मारना असम्भव था। तब मैंने जल्दी से कन्दर के उस पार जाकर यह देखने की सोची कि आख़िर पीले जानवर का शिकार कौन बना। दिशा भ्रम से बचने के लिए मैंने एक अलग पहचानवाले पाइन वृक्ष को याद कर लिया। इस वृक्ष के ऐन नीचे पड़ा एक विशाल पत्थर लटका हुआ था, लगता था कि उसे बस छूने भर की देर है और वह रास्ते में सब कुछ तबाह करता नीचे लुढ़क जायेगा। मेरा विचार था कि इसी पत्थर के पीछे ही खून में लथपथ शिकार पड़ा होना चाहिए।

मुझे हाथों के बल लटककर पाइन की नयी पौध को पकड़-पकड़कर वहाँ चढ़ना था। मेरा अनुमान गलत न था, पत्थर के पीछे मुझे श्रृंगी मृग पड़ा दिखायी दिया, उसके श्रृंग इतने भव्य थे और सौभाग्य से, बिल्कुल सही सलामत। मैं लूवेन के मुँह से अनेक बार सुन चुका था कि मृगश्रृंगों का मूल्य उनके वज़न पर इतना नहीं जितना कि उनकी आकृति पर निर्भर करता है। और आकृति में सबसे बड़ी बात यह है कि बायाँ और दायाँ सींग हूबहू एक जैसा हो। लगता है कि यह कोई अन्धविश्वास या फैशन की माँग नहीं है। हिरण के शरीर के जिस हिस्से में हल्की-सी भी चोट लगती है उस ओर के श्रृंग का विकास दूसरी ओर के श्रृंग से भिन्न होता है। मतलब यह कि अगर श्रृंगों की उपचारक शक्ति मृग के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है तो इसके बारे में उसके सींगों के स्वरुप से पता लगाया जा सकता है।

मैंने पहाड़ी पाइन की जितना बन पड़ा उतनी टहनियाँ तोड़ीं और हिरण को वहाँ पड़ती सूर्य की किरणों से बचाने के लिए उनसे ढक दिया और तेंदुए का सुराग ढूँढ़ने चल पड़ा। वह पत्थर जिसकी ओट में वह पशु छिपा था विराट उकाब जैसा लगता था। मैं कटक के रास्ते लम्बा चक्कर लगाकर वहाँ पहुँचा, पत्थर को पहचानकर सतर्कता के साथ चुपके-चुपके उस ओर बढ़ने लगा। मैं किसी भी क्षण पशु का निशाना साधने को तत्पर था। पर पत्थर के नीचे तेंदुआ अब नहीं था। मैंने किनारे-किनारे सारे पठार का चक्कर लगाया जो शायद कभी ज्वालामुखी का मुख रहा होगा, पर तेंदुआ कहीं भी नहीं मिला। मैं पहाड़ी लिग्नाइट

की एक बेहद सपाट, मानो पालिश करके चिकनी की गयी सिल के पास दम लेने बैठ गया और जब मैं उसे सामने से पड़ती धूप में देख रहा था तो इस सिल पर जमी धूल पर सुन्दर पशु के गुदगुदे पंजे का हल्का-सा निशान दिखायी पड़ा। मैंने विभिन्न दिशाओं से उस पर बहुत बार नज़र डाली और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि तेंदुआ इस सिल पर से गया था। बेशक मुझे यह पता था कि बाघ और तेंदुए कटकों पर घूमते हैं और अब इस सिल पर उसके पंजे का निशान देखकर मुझे कुछ नहीं मिला: गया होगा यहाँ से और छिप गया पत्थरों के बीच, पदचिह्नों के बिना उसे ढूँढ़ना असम्भव था। तब मैंने अपनी नज़रें धुँधली पहाड़ी की तलहटी में सुन्दर अन्तरीप की ओर मोड़ीं और उसकी चट्टानों को निहारने लगा जो दक्षिणी कन्दरों के सभी कगारों की तरह सुन्दर और चंचल चीड़ वृक्षों से सजी-धजी थीं। मैं, नीची, पर हिरणों की प्रिय घास से ढके इस संकरे अन्तरीप पर चरती हिरणी को यहाँ से देख सकता था, उसके पास झाड़ी में पीला घेरा-सा पड़ा था, यह अनुमान लगाना कठिन न था कि यह हिरनौटा था। अचानक वहाँ, जहाँ लहरें धौले फव्वारे छोड़ती अपनी पहुँच से बाहर खड़े गहरे हरे पाइनों को छूने की कोशिश कर रही थीं, एक उकाब उड़ा, अन्तरीप के ऊपर ऊँचाई पर मंडराते हुए उसकी दृष्टि हिरनौटे पर पड़ गयी और वह झपट पड़ा। पर माँ ने विशाल झपटते पक्षी का शोर सुन लिया और झट से मुक़ाबला करने को तैयार हो गयी। वह अपने छौने के सामने पिछली टाँगों पर खड़ी हो गयी और अगली टाँगों से

उकाब को मारने का प्रयास करने लगी और वह अप्रत्याशित विघ्न से तिलमिलाकर तब तक हमला करता रहा जब तक कि पैना खुद उसे न लग गया। चोट खाकर उसने बड़ी कठिनाई से अपने को सम्भाला और पाइनों की ओर वापस उड़ चला जहाँ शायद उसका घोंसला था। लगभग दोपहर का समय हो चुका था, गर्मी बढ़ती जा रही थी; इस पहर में हिरण खुली चरागाहों से शाम तक अपने स्थायी निवास क्षेत्रों में चले जाते हैं और कन्दरों में छायादार पेड़ों के बीच छिप जाते हैं। अन्तरीप पर एकमात्र इस हिरणी ने भी अपने हिरनौटे को उठाया और उसे लेकर उकाब घोंसला अन्तरीप से सीधे उस खड्ड की ओर चल पड़ी जहाँ हमारी फ़ान्ज़ा थी। मुझे इसमें लगभग कोई सन्देह न था कि यह 'हुआ-लू' ही थी और मेरे मन में महासागर की दौड़ती लहरों पर झिलमिलाती धूप-छाँव की तरह कितने ही विभिन्न भाव उमड़ पड़े! पर अचानक मेरे इन भावों को एक विचार ने निःस्पन्द कर दिया जिसने बाद में इस प्रदेश से मेरी सारी गतिविधियों को निश्चित किया। "उकाब घोंसला अन्तरीप से हिरणों के निकलने का कोई रास्ता नहीं," मैंने सोचा, "सिवाय सँकरे, कोई सौ मीटर चौड़े थलडमरूमध्य के और अगर इस थलडमरूमध्य को खूँटों की बाड़ से बन्द कर दिया जाये तो हिरण के लिए सिर्फ एक रास्ता बचता है - खड़ी चट्टान से समुद्र में कूदे और तैरकर तट पर जाये। पर यह भी कोई रास्ता नहीं हुआ: नीचे पानी में नुकीले पत्थर कभी दिखायी देते हैं तो कभी जलमग्न हो जाते हैं, और कोई भी प्राणी इन भंयकर पत्थरों पर

गिरकर मौत के मुँह में समा जायेगा।" तो यह विचार मेरे दिमाग में आया और अनजाने ही वह मेरे रोम-रोम में भरता गया। दम लेकर मैंने सावधानी के साथ एक बार फिर हरेक पीले-ललौंहे धब्बे को गौर से देखते हुए, पठार का चक्कर लगाने का फैसला किया: क्या पता इस दौरान उस पशु ने कोई मंसूबा बना लिया हो... मुझे दिखायी पड़ रहा था कि कैसे जहाँ-तहाँ हिरणियाँ अपने छौनों को चरागाहों से अपने-अपने खड्डों में ले जा रही थीं या बस वहीं, चरागाहों के पास बलूत की झाड़ियों में आश्रय ले रही थीं। कितनी ही बार मुझे यह देखने का मौका मिल चुका था कि पेड़ चाहे कोई खास घना न भी हो पर उसकी छाया में घुसकर चीतल अपनी रक्षात्मक चित्तियों की बदौलत अदृश्य हो जाता था। यहाँ छाया में वे कभी अंगूर की पत्तियाँ चबाकर, कभी अपनी पिछली टाँग के खुर से खुजाकर आततायी किलनियों को निकालते हुए वक़्त काटते। मुझे तेंदुआ कहीं भी नहीं दिखायी पड़ा और घूमघामकर मैं उसी सिल के पास पहुँचा और फिर से वहीं बैठ गया। बैठे-ठाले में फिर से तेंदुए के पंजे के निशान को जाँचने लगा और अचानक मुझे पहले निशान के पास दूसरा, और भी स्पष्ट निशान दिखायी पड़ा। और तो और सामने की धूप में देखने पर दूसरे निशान में मुझे दो सुइयाँ-सी दिखायी दीं, उनमें से एक को उठाकर मैं तेंदुए के पंजे के बाल को पहचान गया। बेशक, पठार के मेरे दूसरे चक्कर के दौरान सूर्य सरक गया था और उसकी किरणें सिल पर अब दूसरे कोण से पड़ने लगी थीं और मैं यह मान सकता था कि तब मैं दूसरे

निशान को नहीं देख पाया और बालों को देखे बिना तब नहीं रह सकता था - बाल दूसरे चक्कर के समय ही वहाँ आये, इसका मतलब यही हुआ कि तेंदुआ चुपके-चुपके मेरा पीछा कर रहा था। यह तेंदुओं और बाघों के बारे में सुनी बातों के अनुरूप ही था: अपना पीछा करने वाले आदमी की पीठ पीछे पहुँचना, उनकी बँधी-बँधायी चाल है।

अब समय गँवाने का वक़्त नहीं था। मैं उकाबों को छिपे हिरण की भनक पड़ने से पहले जल्दी-जल्दी लूवेन के पास गया, सौभाग्य से वह मुझे घर पर ही मिला, और मैंने उसे श्रृंगी मृग के बारे में बताया जिससे वह बड़ा खुश हुआ। हम सीधी चढ़ाई वाले कन्दर के जरिए छोटे रास्ते से उधर गये। वहाँ चोटी पर लूवेन और मैंने चुपचाप एक-एक पत्थर को गौर से देखते हुए सारे पठार का चक्कर लगाया और उस सिल के सामने, अपने निशान छिपाने के इरादे से मैं लम्बी लाठी की मदद से नीचे कूद गया, एक बार और कूदकर मैं पास वाली झाड़ी में जा छिपा, हवा का रुख मेरी ओर था। लूवेन कटक पर आगे चलता जा रहा था और मैं पत्थरों पर कोहनियाँ और रायफल की नाल टिकाकर इन्तजार करने लगा। कुछ देर बाद आकाश की नीली पृष्ठभूमि में मुझे रेंगते पशु की काली आकृति दिखायी पड़ी। भीमकाय बिल्ली इस बात से बिल्कुल बेखबर रेंगती जा रही थी कि मैं पत्थर की ओट से रायफल के लक्षक के बीच से उसको देख रहा था। लूवेन अगर मुड़कर पीछे देखता भी तो शायद ही वह कुछ देख पाता। तब तेंदुआ रेंगता हुआ सिल पर चढ़ गया,

वह रुककर एक बड़े पत्थर के ऊपर से लूवेन को देखने के लिए थोड़ा-सा उठा, मैं तैयार हो गया। लगता था कि दो की जगह एक आदमी को देखकर तेंदुआ पसोपेश में पड़ गया, वह मानो परिवेश से पूछ रहा था: "पर दूसरा कहाँ है?" और जब चारों ओर पूछताछ करके उसने सन्देह के साथ मेरी झाड़ी की ओर देखा मैंने रायफल की मक्खी उसकी नाक के बांसे पर टिका दी और साँस रोककर गोली चला दी। पशु पंजों के बीच सिर रखकर लेट गया, उसकी पूँछ ने कुछ हरकत की और अब सब कुछ ऐसा ही लग रहा था मानो वह अपनी भाग्य निर्णायक छलाँग लगाने के लिए घात में बैठ गया हो।

हमें कितना बढ़िया कालीन मिल गया, पर लूवेन इस बहुमूल्य खाल को पाकर खुश नहीं था। उसकी रहस्यमय, असंख्य अन्धविश्वासों से मिश्रित हकीमी में तो तेंदुए के दिल, जिगर और मूँछों तक की कोई महत्वपूर्ण भूमिका थी। पर जब उसने मरे हिरण के सींग देखे तो वह इन बहुमूल्य चीज़ों के बारे में भूल ही गया।

"भौत-भौत दवा होना माँगता!" कपाल से मस्तक की हड्डी समेत सींग काटते हुए वह बोला।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि वह सींगों को जड़ों से काटने के बजाय माथे की हड्डी समेत क्यों काट रहा है, उसने कहा:

"इस तरह मेरा तिगुना दवा लेना माँगता।"

पता चला कि अगर मृगश्रृंगों को मस्तक की हड्डी समेत काटा

जाये तो उनका दाम दुगना, तिगुना होता है। वे सामान्य, जड़ से कटे मृगश्रृंग केवल उपचार के लिए दवा के काम ही आते पर मस्तक की हड्डी समेत सींग - खिलौना, उपहार, पारिवारिक सुख की जमानत माने जाते हैं और सबसे अमीर चीनी घरों में वे काँच के केस में सुरक्षित रखे जाते हैं, और जब कालान्तर में इन श्रृंगों की आकृति के सिवा कुछ न बचेगा, तो उनका यह दिखावटी रुप, यह करकट मालिक को उसके बुढ़ापे में जवानी का जोश लौटाने की आशा दिलाया करेगा।

"ये घूमो-घूमो सींग हैं," लूवेन बोला, "और इनके बदले भौत दवा मिलेगा।"

विशेष रुप से मूल्यवान जिन्सेंग की तरह घूमो-श्रृंग भी तब तक बहुत हाथों से गुजरेंगे, उनका दाम बढ़ता ही जायेगा, वे अनेक "सौद" के यहाँ जायेंगे जब तक कोई सबसे धनवान और शातिर "उचक" अन्ततः उन्हें सबसे शक्तिशाली मन्दरिन के पास ले जाकर चुपके से उसकी बायीं चौड़ी आस्तीन में नहीं ठूँस देगा और तब मन्दरिन दायें हाथ से "सौद" के लिए कोई फायदे का काम कर देगा।

"मन्दरिन भी उचक होते हैं? मैंने पूछा।

"मन्दरिन ऐश उड़ाना माँगता," लूवेन ने उत्तर दिया।

हमने अपने कन्धों पर हिरण का मांस लादा, उसकी चित्तीदार छाल, बहुमूल्य श्रृंग, तेंदुए का कालीन, दिल, जिगर और मूँछें उठा लीं और चल पड़े। धँधली पहाड़ी से उतरते समय जब हम

उकाब घोंसले के सामने थे मेरी नज़र संयोग से उधर मुड़ गयी और मैंने वहाँ देखा... मेरा विचार जो पिछले घण्टों में अन्दर ही अंदर पूरे ज़ोर से उमड़-घुमड़ रहा था अब अपने समर्थन के लिए आवश्यक बहुमूल्य सामग्री पाने के कारण स्पष्ट हो गया, मैं खुद भी आश्वस्त हो गया और अचानक मेरा मन हल्का हो गया।

और देखा मैंने वह था जो लूवेन ने भी यहाँ अपने प्रवास के तीस वर्षों में अनेक बार देखा था। मैंने देखा कि कैसे पुष्प-मृग थलडमरूमध्य को पार करके उकाब घोंसले की चरागाह में जा रही है।

इशारे से लूवेन को हिरणी दिखाते हुए मैंने उसे स्थायी रूप से बहुत-बहुत दवा कमाने की सीधी-सादी योजना बता दी और वह बेहद प्रसन्न होकर बोला:

"अच्चा, अच्चा, कप्तान!"

यह मेरे लिए दीर्घ चिन्तन-मनन की सामग्री थी और अब तक मैं अन्तिम रूप में इस प्रश्न को नहीं सुलझा पाया कि क्यों उसी क्षण से लूवेन ने मुझे हमेशा कप्तान कहकर पुकारना शुरु कर दिया जब मैंने उसे अपनी इस छोटी-सी खोज के बारे में बताया था?

8

किसी प्रकार लूवेन ने सुन्दर फ़ेज़ेंट को पकड़ लिया और मुझे दिखाने के लिए लाया। ‘चलो, खायेंगे इसे," मैंने कहा, क्योंकि

मैं जानता था कि मंगोलियाई फ़ेज़ेंटों का सफ़ेद गोश्त कितना उम्दा होता है।

"खाना, अच्छा-अच्छा, कोंत्रामी1 नहीं कर सकता, कप्तान!"

1. कोंत्रामी - सिर काटना। - लेखक

मैंने झट से फेजेंट का सिर काट दिया। वह बोला:

"अच्छा, कप्तान!"

और पंख नोचने लगा। फिर हमने चावल डालकर शोरबा बनाया और साथ मिलकर खाने का आनन्द लेने लगे।

बेशक, फ़ेज़ेंट का सिर काटना बहुत मुश्किल काम होता है पर फिर भी, इस विषय में सोचते हुए कि क्यों अचानक मैं ही लूवेन के लिए कप्तान बन गया, मैं बाकी सामग्री में इस छोटे-से काम को भी जोड़े बिना नहीं रह सकता था: अर्थ यह निकलता था कि कप्तानों का गुण खोजें-अन्वेषण करना ही नहीं बल्कि सिर काटना भी था। शायद जब लूवेन टैगा में आया होगा तब वह वैसा गम्भीर और प्रशान्त न रहा होगा जैसा वह जीवन की जड़ की खोज के दौरान हो गया था। कभी वह चीनी बहेलियों के साथ भयंकर चीनी छल के सहारे हिरणों, काकड़ों और जंगली बकरियों को पकड़ता था: पेड़ों को इस रह गिराकर कि उनकी जड़ें आपस में सटी रहें, कहीं-कहीं रास्ता छोड़ देता था जानवरों के भागने के लिए, और यहीं इन खुले स्थानों पर टहनियों से ढके गड्ढे होते थे और जानवर उनमें गिर पड़ते थे, इस तरह गिरने से

अकसर उनकी टाँगें टूट जाती थीं। लूवेन बर्फ़ की कड़ी पपड़ी पर अपने छोटे-से कुत्ते के साथ हिरण का शिकार करता था, कुत्ता उसका इतना खूँख्वार था कि वह हिरण की बगल में दाँत गड़ाकर उसके साथ तब तक घिसटता जाता था जब तक कि बर्फ़ की कड़ी पपड़ी से पाँव घायल करके हिरण रुक न जाता। ऐसे छोटे-छोटे कुत्तों की मदद से चीनी हिरणों को बर्फ़ की पपड़ी से समुद्र में खदेड़ने की कोशिश करते और वहाँ अपनी नौकाओं में बैठे-बैठे उन्हें पकड़ते और पानी ही में उन्हें रस्सियों से जकड़ देते। पकड़े हुए हिरणों को तब तक पालते जब तक उनके सींग न निकल आते और फिर मूल्यवान मृगश्रृंग काटकर उन्हें हलाल कर देते मांस के लिए। पर अब उस समय की कल्पना करना ही कठिन था जब लूवेन दूसरे चीनी बहेलियों के साथ दुर्लभ और मरणोन्मुख जन्तुओं का इतनी निर्दयता के साथ संहार करता था, वह भी केवल धनवानों के लिए घूमो-श्रृंग जुटाने की खातिर। तो टैगा में उसने अपना जीवन बहेलिये के रूप में शुरू किया था और, निःसन्देह, वह जीव-जन्तुओं के निशानों को बहुत ही अच्छी तरह समझ सकता था, तथा निशान देखकर ही वह जीव-जन्तुओं के इरादे भाँप सकता था, अरे, वह खुद भी जानवरों की तरह सोच तक सकता था। पर मुझे टैगा के इस अन्वेषक के अनुभव पर वैसा श्रद्धापूर्ण आश्चर्य नहीं होता था जिसके साथ कुछेक ऐसे अन्वेषकों के बारे में बताते हैं। मैं तो एक रसायनशास्त्री होने के नाते कुल मिलाकर टैगा के इन सभी अन्वेषकों की अपेक्षा हज़ार गुना अधिक शक्तिशाली अन्वेषक

था। मेरे लिए इन जंगली अन्वेषकों का यह ज्ञान है ही क्या, जब मैं किसी भी पदार्थ का गुणात्मक रासायनिक विश्लेषण कर सकता हूँ और उसके तत्वों की मात्रा का हज़ारवें अंश तक अनुमान कर सकता हूँ! यही नहीं, मैं रसायनशास्त्र की तरह किसी भी अन्य क्षेत्र में अपने सूक्ष्म ध्यान को मोड़ सकता हूँ और अल्प अवधि में ही किसी भी ऐसे अन्वेषक को पिछाड़ सकता हूँ जिसने अपने सारे जीवन को किसी एक काम में निजी अनुभव अर्जित करने में ही बिता दिया। नहीं, टैगा के जीवन के प्रति लूवेन का यह सूक्ष्म ध्यान मुझे चकित नहीं करता था, बल्कि सगेपन का वह ध्यान जो वह प्रकृति के प्रत्येक प्राणी के प्रति दर्शाता था। मुझे इस पर आश्चर्य नहीं होता था कि वह टैगा के जीवन को समझ सकता था बल्कि इस पर कि लोक में वह हर चीज़ को सजीव बनाने में समर्थ था। शायद उसके जीवन में ऐसा कोई गहरा मोड़ आया था जिसके कारण उसने अपना निर्दय व्यापार त्याग दिया और जानवरों को फँसाने के इस वहशी, जीवन का नाश करने वाले काम के बदले जीवन की जड़ की खोज करने लगा। मन का मंथन करने वाले कुछ ऐसे भाव होते हैं जिनके बारे में न कभी बताना उचित होता है न पूछना: अपने आप में वे कुछ ज़्यादा नहीं कहते। मानव अपने कार्यों से अपने इन गहन भावों के बारे में बताते है और दूसरा मानव, उसका मित्र, इन कार्यों को देखकर अपने आप सब समझ जाता है। मुझे पता था कि लूवेन के कन्धों पर अपने भाई के बड़े परिवार का बोझ था, मैं अक्सर सोचता हूँ कि कुटुम्ब की सम्पत्ति

के बँटवारे में उसके साथ किये गये अन्याय का बेहद बुरा मानकर लूवेन सगे भाई का जानी दुश्मन बनकर टैगा में चला आया होगा। हो सकता है कि अपने आखेटी जीवन के पहले दस वर्ष उसने अपने पिता को, जो उसे निखट्टू समझता था, सिर्फ यह सिद्ध करने में बिता दिये कि वह अपने श्रम से भाई की तुलना में बेहतर जीविका कमा सकता है। और समय आने पर, पिता के लिए इसका प्रमाण और भाई के लिए तिरस्कार लेकर चीन पहुँचा, पर वह रहा ही नहीं जिसे कुछ सिद्ध करता और तिरस्कार किये जाने के काबिल भी कोई न रहा। किसी भयानक अकाल के बाद, जैसा कि चीन में अक्सर होता रहता है, लूवेन की केवल भाभी अपने ढेर सारे बच्चों के साथ जीवित बची। हो सकता है कि तभी से लूवेन बदल गया हो। पहले वह सिद्ध करने की खातिर जीता था पर अचानक कोई रहा ही नहीं जिसे वह कुछ सिद्ध करके दिखाता, बाद में चीनियों से मैंने ऐसे ढेरों किस्से सुने। अगर मैंने लूवेन के मुँह से उसकी रामकहानी सुनी होती तो फिर भी वह मुझे फ़ान्ज़ा के पास लूवेन के हाथों कभी रोपे गये दो विशाल पोपलरों से अधिक न बता पाती। कितनी खुशी के साथ वह उनसे मिलता था, उनकी हरियाली में बैठे उसकी बाट जोहते विभिन्न प्राणियों से वह हमेशा बुदबुदाकर न जाने क्या-क्या चीनी शब्द कहता! उसका प्यारा कौआ हमारे रुसी कौओं जैसा सलेटी नहीं बल्कि काला था। पहली नज़र में देखने पर लगता: "अरे यह तो रुक है!" पर फिर गौर से देखने पर याद आता कि रुक की तो चोंच सफ़ेद होती है पर इसकी

काली है। "अच्छा, तो यह रैवन है!" पर अचानक यह काला रैवन हमारे यहाँ के सलेटी कौए की तरह काँय-काँय करने लगता। बेहद अक्लमन्द था वह, जब लूवेन टैगा को जाता तो कौआ बड़ी दूर तक एक पेड़ से दूसरे पर उड़कर बैठता उसे विदा करता। पेड़ पर नीली मैगपाई भी और माकिंगबर्ड, कौड़िल्ली, चिलबिलें, पीलक, कोयल भी रहती थी, बटेर भी आकर झाड़ियों में चिल्लपों मचाती। पर उसकी आवाज़ हमारी बटेरों से भिन्न होती। इसी तरह सारे के सारे पक्षी देखने में हूबहू हमारे यहाँ जैसे लगते, देखकर फौरन पहचान में आ जाते पर छोटी ही सही पर कुछ न कुछ बात उनमें वैसी न होती। मैना भी काली होती, चोंच भी पीली होती, पंखों पर भी वैसी इन्द्रधनुषी आभा खेलती, जैसे ही गाने की तैयारी करती फूल कर कुप्पा हो जाती, लगता कि बस अभी वह जैसे हमारे यहाँ की, वसन्त में चहचहाती हैं वैसे ही चहचहायेगी और उसे सुनने की आकुलता से प्रतीक्षा होने लगती है पर प्रतीक्षा निष्फल होती है: खर्र-खर्र के सिवा कुछ नहीं सुनने को मिलता। और कोयल कू-कू नहीं, के-के करती। रोज़ सवेरे लूवेन उनके साथ बातचीत करता, उन्हें दाना डालता और मुझे यह मैत्री और सभी प्राणियों के प्रति सगों का सा यह व्यवहार बहुत अच्छा लगता। मुझे विशेषकर अच्छा लगता था कि लूवेन यह किसी स्वार्थ की खातिर या दूसरों को सदाचार का उदाहरण दिखाने के लिए नहीं करता था, यह सब वह अपने सहज स्वभाव से करता। और जब फ़ेज़ेंट उसके हाथ लगा, निःसन्देह, उसको खाना चाहिए था, पर यह कैसे करे अगर

इसके लिए "कोंत्रामी" ज़रुरी था? और वह दूसरे व्यक्ति से, कप्तान से "कोंत्रामी" का अनुरोध करता है जो यह करने में अधिक समर्थ है। पर, वह यह जानकर कितना प्रसन्न हुआ खुद कप्तान सुन्दर, मरणोन्मुख जीव के संहार से क्षुब्ध होता है, कि वह उसकी रक्षा करने और उसे पालने का इच्छुक है।

मेरी योजना को कार्यान्वित करने के लिए हमने, यहीं, अपने खड्ड में ढेरों लताएँ-बेलें काटीं और इन रस्सियों को आग की धूनी दी ताकि जानवर दूर ही से धुएँ की इस कालिख की गंध को महसूस करके उसमें मानव के घातक मंसूबों को पहचान लें और डरकर रहें। यहीं हमने एक स्लेज बना डाली ताकि इन बेलों को उस पर लादकर एक आदमी अकेला ले जा सके। पौ फटने से बहुत पहले ही मैं धुँधली पहाड़ी पर पहुँच चुका था, जब पुष्प-मृग अपने हिरनौटे के साथ उकाब घोंसला अन्तरीप पर ले गया, मैंने संकेत देने के लिए अलाव जला दिया। इसके बाद मैं आधी ढलान भी न उतर पाया था कि लूवेन ने थलसंयोजक पर मोर्चा सम्भाल लिया और माँ-हिरणी के भाग्य का फैसला हो चुका था: सीधे किसी आदमी की ओर जाने का साहस करने के बजाय उसके लिए सागर की नुकीले चट्टानों पर कूदना कहीं आसान था, वह कैद में बन्द हो गयी थी और इस क्षण से उकाब घोंसला अन्तरीप दुनिया का सबसे सुन्दर चट्टानी जन्तु उद्यान बन गया था। हम रात तक थलसंयोजक की चौड़ाई में बेलों से बनी अपनी धूनी दी गयी रस्सी को तानते रहे। सुबह को पत्थरों के पीछे छिपकर हम उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे जब हिरण

चरागाहों से खड्डों-घाटियों में अपने-अपने छायादार घरों को चले जाते हैं। हमने देखा कि पुष्प-मृग चट्टान पर हिरणों की पगडण्डी पर शान्ति से, बाहर निकलने के रास्ते की ओर चली आ रही है। कल उस पगडण्डी से हम खम्भों के लिए एक पाइन वृक्ष काटने के वास्ते अन्तरीप पर गये थे।

हिरणी हमारे निशानों तक पहुँचकर ठिटकी, उसने नथुने फुलाये, उसे नीचे से कोई बू आयी और उसने सिर झुकाया। फिर उसने सिर ऊँचा उठाया, हवा में हमारी धूनी दी गयी बेलों की गन्ध पाकर उसने उस स्थान को घूरा जहाँ हम बैठे थे, उसे खतरे का विश्वास हो गया ओर वह सीटी बजाकर उल्टे पाँव दौड़ पड़ी और उसके पीछे-पीछे बलूत की झाड़ियों में, माँ के सफ़ेद दुंबे पर नज़रें गड़ाये हिरनौटा भी फुदकने लगा।

अब मुझे विश्वास हो गया था कि यह हिरणी मेरी ‘हुआ-लू’ ही थी: उसके बायें कान में आर-पार छेद चमक रहा था। उसकी नज़रों से विदा करके हम प्रसन्नचित्त अपनी ओट से निकले और फौरन बाड़ बनाने के दैनिक काम में जुट गये। इस प्रकार मैं, प्रशिक्षित यूरोपवासी, चीनी की नज़र में - झट से सब कुछ समझने, नयी-नयी चीज़ें सोच निकालने और आकस्मिक खोजें करने में समर्थ कप्तान और जिन्सेंग का यह वृद्ध खोजी स्वेच्छा से एक हो गये जिसे न केवल टैगा और जीवजन्तुओं का ज्ञान था बल्कि उन्हें ख़ूब अच्छी तरह समझना भी और टैगा में उनके परिवेश से अपने को सगों की तरह जोड़ना भी आता था। सच्ची मानवीय सभ्यता के नज़रिये से उसे मैं अपने से बड़ा मानता था

और उसका आदर करता था। वह शायद मुझमें एक गोरे यूरोपवासी को देखता था और मेरे साथ उसका व्यवहार वैसा ही हर्ष मिश्रित आश्चर्य और सौहार्दपूर्ण मैत्री का था जैसा बहुत-से चीनी यूरोपवासियों के साथ करते हैं, अगर उन्हें यह पक्का यकीन हो कि यूरोपवासी उन पर अत्याचार नहीं करना और उन्हें धोखा नहीं देना चाहते। उस समय, बेशक, मुझे इसका तनिक भी आभास न था कि उस काम की परिणति क्या होगी जिसका सूत्रपात हमने किया, कि हवाई जहाजों और बेतार की हो तरह यह भी बिल्कुल नयी चीज़ है। जंगली पशुओं को पालतू बनाने का काम लोग मानव सभ्यता के केवल उषाकाल में ही करते थे और कुछेक प्रकार के पशुओं को पालतू बनाकर न जाने क्यों उसे छोड़ दिया और जीवन का एक ढर्रा बनाकर पालतू पशुओं के साथ रहने लगे और जंगली जानवरों को मारने लगे। हम अब तक संचित विपुल ज्ञान से सम्पन्न होकर इसी काम को फिर से शुरू कर रहे थे, और निःसन्देह, हम भिन्न लोग थे, और मानव सभ्यता के उषाकाल में वहशियों द्वारा शुरू किये गये धंधे को भिन्न ढंग से लगाया जाना था।

9

साइबेरिया की साँस हमारी ओर आने लगी थी और उपोष्ण दक्षिणी तटवर्ती प्रदेश साइबेरिया का परिधान पहनने लगा। पहाड़ों में सब के सब जुगनूं कभी के गायब हो चुके थे। फ़ेज़ेंट बड़े होकर तूफ़ानों की कंघी से कढ़ी बलूत की झाड़ियों और अन्य घने झुरमुटों में बनी अपनी अभेद्य शरणस्थलियों से बाहर

निकल आये। प्रातःकालीन पाले के स्पर्श से अंगूर की पत्तियाँ लाल हो गयीं, अंगू वृक्ष पर सोना चढ़ने लगा। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि निरन्तर छाया रहने वाला कोहरा छँट गया और जिस तरह हमारे यहाँ वसन्त में सूरज प्रकट होता है वैसा यहाँ पतझड़ में प्रकट हुआ - और वह भी कैसा! सूरज यहाँ ठीक वैसे चमक रहा था जैसे इटली का सूरज चमकता है और इस धूप में साइबेरियाई पतझड़ हमारी सामान्य जलवायु के वसन्त के सभी फूलों से कहीं अधिक आभा और भड़क के साथ खिल उठी। सितम्बर की एक पहली तुषारित सुबह को टैगा में काकड़ की चिंघाड़ सुनायी पड़ी, एक बार चाँदनी रात को अपनी फ़ान्ज़ा में लूवेन और मैंने चिंघाड़ सुनी और फिर तड़-तड़ सींगों के टकराने की। एक बार की बात है: कहीं काकड़ चिंघाड़ा, दूसरी ओर से किसी का लगभग काकड़ जैसी आवाज़ में उत्तर गूँजा। लूवेन ने पहले और दूसरे काकड़ की चिंघाड़ों में सूक्ष्मभेद को भाँप लिया। बाघ भी मानो काकड़ की नकल कर सकता है और आदमी भी भुर्ज की छाल के बिगुल की मदद से मतवाले काकड़ को फुसलाकर अपने पास बुलाता है। लूवेन ने कहा कि दूसरा बाघ या आदमी होना चाहिए। हम कान लगाकर सुनने लगे कि कौन चिंघाड़ा था - बाघ याआदमी। शीघ्र ही पहली चिंघाड़ दूसरी, स्थिर चिंघाड़ के अधिकाधिक पास, निकट ही निकट आने लगी और फिर निःस्तब्धता छा गयी। काकड़ चुपचाप पास आ रहा था बस कभी-कभार किसी टहनी के चटखने की हल्की-सी आवाज़ आ रही थी। बाघ मैदान के छोर पर घात में लेट

गया और अपनी घातक छलाँग लगाने की तैयारी करने लगा। आदमी ने दुनाली के घोड़े चढ़ाये और चौपाये की नकल करते हुए जान-बूझकर कोई टहनी चटखा दी। इस भयंकर प्रश्न को अपने में समाये टैगा ने भयावह मौन धारण कर लिया था: बाघ या आदमी? और अचानक रायफल की स्पष्ट गरज ने निःस्तब्धता को भेद दिया। फैसला आदमी ने कर दिया।

शीत-निद्रा में डूबने से पहले चमचमाती धूप की चटकीली आभा से दमकते वृक्ष और कामुकता की पीड़ा झेलते पशु की यातनापूर्ण चिंघाड़ - देखा, कैसा होता है मृगों का प्रेम! एक बार झाड़ियों में मुझे उलझे सींगोंवाली दो खोपड़ियाँ पड़ी मिलीं। दो अष्टश्रृंगी पहलवान काकड़ों ने मादा को पाने के लिए द्वन्द्व में अपनी जानें गँवा दीं और किसी कमीने की चाँदी हो गयी - हम लोगों के बीच भी ऐसी बात को देखकर क्या बुरा नहीं लगता?

हर दिन के साथ सुबह पाले का जोर बढ़ता ही जा रहा था, पहाड़ी नरकट प्रातः धवल तुषार के मखमली परिधान में प्रकट होता और जब सूरज उग आता तो वह ओस में नहाया चमचमाती बूँदों से ढक जाता। कुछ ही दिनों की देर है और तुषार प्रातःकालीन सूर्य से डरना छोड़ देगा और धूप में उसके कण पानी की बूँदों से कई गुना अधिक चमकेंगे। काकड़ों की मस्ती के दिनों चीतल मृग अपने यातनापूर्ण संगम काल की तैयारी में जुट जाते हैं। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों में मैं टैगा में अनेक बार देख चुका था कि श्रृंगी मृग कितने सब्र और ध्यान के साथ अपने अब अस्थिकृत हुए मजबूत सींगों को किसी पेड़

के तने से रगड़-रगड़कर उन पर बचे बाल झाड़ते थे। जितने में काकड़ चिंघाड़ते फिरते हैं उतने में वे द्वन्द्व की तैयारी करते हैं और जब पाला पकते अंगूर को अच्छी तरह जकड़ लेता है और वह मीठा हो जाता है चीतल मृग चिंघाड़ना शुरू कर देते हैं।

अपने चीतल फार्म के लिए हमें श्रृंगियों की आवश्यकता थी और लूवेन के साथ हम भी इस काल की तैयारी करने लगे। हम 'हुआ-लू' को अपने से हिला लेना चाहते थे ताकि संगम ऋतु में उसे छोड़ा जा सके और जब उसकी खातिर नर हिरण द्वन्द्व करने लगेंगे तो हम उसे भुर्ज की छाल से बना हिरण बिगुल बजाकर वापस बुला सकें, हमें आशा थी कि अपनी कामवासना से पागल नर हिरण उसके पीछे दौड़े-दौड़े हमारे यहाँ आ जायेंगे। हमारी मुसीबत यह थी कि उस साल उकाब घोंसले की चरागाह में हिरणों की पौष्टिक घास की भरपूर फसल हुई थी और 'हुआ-लू' उसी से सन्तुष्ट थी, वह न हमारी पूलियों की ओर ध्यान देती थी जिन्हें हमने हिरणों के सबसे प्रिय पेड़ों की टहनियों से बनायी थीं, न मकई और सोयाबीन के दानों की ओर। पहाड़ी नरकटों की बुहारियों के बीच, जो अब बिल्कुल पीले पड़ चुके थे वह छोटी-सी घास ढूँढ़ लेती जो हमें पीले चरागाह में नज़र न आती थी, दिनचर्या उसकी सीधी-सादी थी: कभी वह झुककर इस हरी घास को नोचती, तो कभी पेड़ की छाया में बुत बनकर खड़ी हो जाती, हिरनौटे को दूध पिलाती, कभी-कभी लेटकर अपने और हिरनौटे के बदन से खून चूसनेवाली किलनियाँ निकालने की कोशिश करने लगती। आख़िर को एक दिन मुझे ये देखकर

कितनी खुशी हुई कि मेरी गन्ध पाकर वह पहले की तरह भागी नहीं, बल्कि कुछ दूर तक उस रास्ते पर चलती गयी जहाँ से मैं गुजरा था, मानो उसे यह जानने का कौतूहल था कि मैं कहीं पास ही में छिपकर तो नहीं बैठा हूँ। और जब उसने मुझे देखा तो हिरणों की तरह सिर पर पाँव रखकर दौड़ी नहीं बल्कि बस झटके से मुड़ी और अपने हिरनौटे के साथ धीरे-धीरे वहाँ से चली गयी। दूसरी बार की बात है, जब उसे मेरी गन्ध मिली और मैं भुर्ज की छाल का बिगुल बजाने लगा तो वह मुझे देखकर खड़ी हो गयी और बड़ी देर तक सुनती रही। वह यह समझने की कोशिश कर रही थी कि माजरा क्या है, पर स्वाभाविक ही था कि वह कुछ समझी नहीं और उसने खुर पटककर सीटी मारी और धीरे-धीरे चली गयी, शायद उसका मानना था कि पहले की तरह यही बेहतर रहेगा। रोज, बिला नागा मैं उसके लिए बिगुल बजाता था और बस इतनी ही सफलता मुझे मिली कि वह बाजे को सुनकर चरना छोड़ देती और बिगुल की आवाज़ की ओर तब तक बढ़ती रहती जब तक मैं उसे दिखायी न दे जाता, फिर खड़ी होकर बड़ी देर तक सुनती रहती। जब तक मैं बिगुल बजाता रहता वह खड़ी रहती और उसका छौना थन चूसने लगता, कुछ करने को तो होता नहीं उसके पास। पर पहली गरमी में मैं उसे बिगुल की आवाज़ सुनकर मेरे बिल्कुल पास आना नहीं सिखा पाया।

इस बीच पाला, चाहे बहुत हल्का ही सही, सभी पत्तों को सुखाकर रँगने लगा। छोटी पत्तियों वाले मैपिल पर लपटों जैसी

लालिमा छा गयी, मंचूरियाई अखरोटों के बड़े-बड़े दिलेर पत्ते पीले रंग में रँगने लगे। और अब जुसुखे के तट के भी क्या कहने, जहाँ मैंने 'हुआ-लू' को पहली बार देखा था, पिछली टाँगों पर खड़ी धूप में पन्ने की तरह चमकती अंगूर की पत्तियों को खाते! वहाँ, जहाँ गरमी में अंगूर की लताओं से लिपटे पेड़ों का पूरा का पूरा हरियाला गाँव बसा था, ये सब कुटियाँ अब अंगूर से लाल हो गयी थीं और उस हरे मण्डप में जहाँ मुझे अपनी भाग्य निर्णायक घड़ी बितानी पड़ी थी, अपने लाल और पीले रंग के कारण अलग ही दिखायी देता था। पहले लगता था अंगूर ने किसी पेड़ का बिल्कुल ही दम घोंट दिया पर अब दिखायी देने लगा था कि अंगूर की लताओं की हरियाली के नीचे भी पेड़ को पर्याप्त रोशनी मिल जाती थी और वह ज़िन्दा था। मंचूरियाई अखरोट का यह पेड़ अब अंगूर की लाल पत्तियों के बीच से अपना सोना चमका रहा था और जिधर देखो उधर कहीं लाल पृष्ठभूमि में तो कहीं पीली में हल्का-सा पाला खाये अमूरी अंगूर के काले गुच्छे लटके थे।

एक बार रात को लूवेन ने मुझे जगाया और बाहर आने को कहा। उसने मुझे उस ओर देखने का इशारा किया जहाँ सप्तर्षि काली पहाड़ी पर मामूली डोलची की तरह अपने कोने को ऐसे टिकाये था मानो अपनी पूँछ के नदारद तारे को काली पर्वतमाला के पीछे से उलीच कर निकाल रहा हो। तारों के भी क्या कहने! कितने टूट-टूटकर बरस रहे थे! मौसम खुश्क था, हवा पारदर्शी, पाला पड़ रहा था और निःस्तब्धता में पहाड़ी से,

सप्तर्षि के नीचे से बिल्कुल अलग ही, खास आवाज़ सुनायी पड़ी: शुरू में वह चीतलों की आम सीटी की तरह हुई और फिर तीखी सीटी तेजी से अधिकाधिक भारी चिंघाड़ में बदल गयी, एक साइरन की तरह, पर इस ध्वनि का क्रम उल्टा था। खड्ड के दूसरे छोर पर इस सीटी-चिंघाड़ के उत्तर में ठीक ऐसी ही सुनायी पड़ी, और आगे धुँधली पहाड़ी पर ऐसी ही चिंघाड़ सुनायी दी, उससे आगे - हमारी चिंघाड़ की हल्की-सी प्रतिध्वनि की तरह और भी दूर से हमारी प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि की तरह सुनायी दी।

वह समय आ गया जिसकी हमें कब से प्रतीक्षा थी। चीतलों की संगम ऋतु शुरू हो गयी।

सुबह तक चिंघाड़ जारी रही ओर जब दिन निकल आया तो हमने देखा कि पहाड़ी की ढलान पर, मैदान के पास बड़ा श्रृंगी खड़ा था और उसकी पीठ पर काली धारी साफ़ दिखायी दे रही थी। वह उस 'कलपीठू' से बहुत मिलता-जुलता था जो झरने के पास तब दूसरे हिरणों के साथ आया था जब मैं वहाँ नहा रहा था। यह श्रंृगी अब दूर से उससे ज़्यादा सख्त लग रहा था, जैसा मुझे तब लगा था, वह निरन्तर इधर-उधर देख रहा था मानो उसे चिन्ता के साथ किसी बात की प्रतीक्षा हो। फिर शायद झाड़ियों में कुछ हुआ और वह बेतहाशा उनकी ओर दौड़ पड़ा, एक झाड़ी से हिरणी निकलकर दौड़ पड़ी और वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ कटक पर चढ़ गया। उसी क्षण कटक के पीछे से उगते सूरज की पहली किरणें फूटीं, तुषार में लिपटा

पहाड़ी नरकट चमचमा उठा और पूरी पहाड़ी की चमक ने हमारी आँखें चौंधिया दीं। जब लूवेन के साथ दौड़ता हुआ मैं ऊपर चढ़ा तो हिरणी चरते झुण्ड में उसी तरह जा छिपी जैसे कोई चंचल बाला अपनी सखियों के बीच छिपकर पकड़ में नहीं आती। पर इस अकेली हिरणी की वजह से सारे झुण्ड का जीना हराम हो गया, 'कलपीठू' धीरे-धीरे टहल रहा था। रात ही को वह कहीं कीचड़ में नहा आया, शायद इस प्रकार वह अपनी कामवासना की आग को यथासम्भव ठण्डा करना चाहता होगा। वह कुछ नहीं खा रहा था। प्रतीत होता था कि उसे कोई खुशी न मिल रही थी, कामवासना सिवाय यातना के उसे कुछ न दे रही थी, और अब सारा जीवन एक लगभग अनवरत यातनापूर्ण चिंघाड़ ही बनकर रह गया था। उसे पल भर का भी चैन न मिल रहा था। एक भी मादा अगर जरा-सा भी हरम से निकलने की सोचती तो झट से जाकर भगोड़ी को वापस झुण्ड में खदेड़ देता।

अचानक सब हिरणों के सिर एक दिशा में मुड़ गये और वहाँ, टीले के पीछे से किसी के सींग उगने लगे। 'कलपीठू' चौकस हो गया पर सींग बड़े तुच्छ निकले: उसी भगोड़ी हिरणी की गन्ध को सूँघता हुआ कोई औसत, बेहद मामूली श्रृंगी आ रहा था। 'कलपीठू' ने उसे खदेड़ने का प्रयास तक न किया, उसने बस नाक सिकोड़कर फूत्कार की और आगन्तुक ढलान पर ठिठककर खड़ा हो गया, उसमें एक कदम आगे बढ़ने का साहस न था। हवा में और ज़मीन पर हिरणी की गन्ध फैली हुई थी। उधर पहाड़ी से उसी रास्ते श्रृंगी उसकी गन्ध को सूँघते हुए आ रहे थे,

और मानो सिर नवाते हुए अन्तिम टीले के पीछे ओझल हो जाते और फिर अचानक उसके पीले से उनके सींग प्रकट होते। पर ये सब ऐसे थे कि 'कलपीठू' के नथुनों की हरकत को देखते ही ठिठककर खड़े हो जाते थे। कई ढीठ भी आये। 'कलपीठू' को नाक सिकोड़कर, अपनी सलेटी जीभ फटकारनी पड़ती और दौड़कर उन्हें खदेड़ना पड़ता। कुछ ऐसे भी थे कि उन्हें खदेड़ा जाता और वे फिर चुपके से पास आ जाते, तब यह क्रम चलता रहता जब तक हरम का मालिक यह न समझ जाता कि अगर ये धूर्त केवल हवा में बसी गंध से ही सन्तुष्ट होकर चुपचाप झुण्ड के पास खड़े रहें तो इसमें उसका कोई नुकसान नहीं। कुछ बड़े जवान भी थे, सींगों के स्थान पन उनके अभी खूँटें ही थीं, ये तो बस वयस्क हिरणों की नकल कर रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे, एक दूसरे पर फूत्कार रहे थे, माथे भिड़ाकर एक दूसरे को धकेलने लगते। इस प्रकार हिरणों के जीवन में धीरे-धीरे सामान्य दीर्घकालीन सहजता स्थापित हो गयी, कुछ-कुछ वैसी ही जैसी दीर्घ शान्तिकाल में हम लोगों के जीवन का ढर्रा होता है। हिरणियाँ अपने झुण्ड में इच्छा-अनिच्छा की सीमा पर डगमगाती मादा को छिपाये चैन से चर रही थीं, हिरनौटे अपने सींकों जैसे सींगों को टकराते बकरों की तरह माथे भिड़ाते खेल रहे थे, आधी पहाड़ी पर श्रृंगी-सहायक हरम के ताकतवर मालिक के हर इशारे को मानने को तैयार बाअदब खड़े थे। और अचानक पूरे के पूरे झुण्ड की नज़रें कोई असाधारण भनक पाकर अब उस टीले की ओर मुड़ गयीं जिसकी आड़ से कामातुर मादा

की गन्ध सूँघ-सूँघकर सब श्रृंगी आ रहे थे। शीघ्र ही सबको टीले के पीछे से ऊपर उठते हुए सींग दिखायी दिये - और सींग भी कैसे! सींग धीरे-धीरे उग रहे थे और लगता था मानो सभी हिरण घबराकर यह सोच रहे थे: अरे, कब होंगे उगना बन्द? पर जब सींगों के बाद अजेय ललाटवाला शक्तिशाली सिर दिखायी पड़ा तो स्थिति फौरन साफ़ हो गयी: सर्वशक्तिमान, टैगा का स्वामी आया है। मैं भी फौरन समझ गया कि यह बलवान श्रृंगी मृग वही 'सुरमई नयन' था, जिसे मैंने चिकी-चिकी खड्ड में अपने आगमन के पहले दिन इतना मंत्रमुग्ध होकर देखा था। तब भी वह दूसरों की तुलना में, 'कलपीठू' तक की तुलना में बहुत भव्य लगा था, पर अब उसकी गर्दन बेहद फूली हुई थी, गर्दन के नीचे से शीतकालीन सलेटी बाल दाढ़ी की तरह लटके थे, संवेदनशील रक्तिम श्रृंग अब, शत्रु को मौत के घाट उतारने वाले भयंकर अस्त्र बन गये थे। 'कलपीठू' की तरह ही वह भी कीचड़ में लथपथ था, उसका गन्दा, अपने ही वीर्य से सना पेट फड़क-फड़ककर पिचक रहा था - नयी पीढ़ी में हिरण्य जीवन को जारी रखने का एकाधिकार पाने की खातिर यह पशु कुछ भी करने को तैयार था, पशु आपे में न था। झुण्ड को देखकर 'सुरमई नयन' बस पल भर को ठिठका और फौरन सब भाँप गया, और सब उसे फौरन भाँप गये: यह सम्भव था कि इससे पहले भी द्वन्द्वों में श्रृंगियों की ताकत की आजमाइश हो चुकी थी, क्या पता बाहरी रूप से ही ताकत छलकती हो। कुछ भी हो, पर झुण्ड और 'सुरमई नयन' के बीच जितने भी श्रृंगी खड़े थे, सब सहमकर

पीछे हट गये, लगता यही था कि 'कलपीठू' का 'सुरमई नयन' के साथ कोई पुराना खूनी हिसाब-किताब बाकी था। हो सकता था कि उनके बीच यह अलिखित समझौता हो कि 'कलपीठू' को 'सुरमई नयन' की नज़र में नहीं पड़ना चाहिये और अगर आमना-सामना हो ही गया तो पीठ नहीं दिखानी होगी और अन्तिम साँस तक लड़ना पड़ेगा। सींग बेशक भयंकर अस्त्र होते हैं पर फिर भी सींग सब कुछ नहीं होते - ऐसी भी घटनाएँ देखने में आ चुकी हैं जब बिना सींग के हिरण ने सींगवाले की पसलियाँ तोड़ीं। पर 'सुरमई नयन' के सींग उसकी छिपी शक्ति को दर्शा रहे थे। पर 'कलपीठू' की दुष्ट आँखों में मानो पहलवान को धोखे की चाल में फँसाने का इरादा छिपा बैठा था: 'अपनी जान की परवाह नहीं, पर बच्चू तुझे मजा चखा दूँगा!' पर 'सुरमई नयन' वक़्त बरबाद नहीं करना चाहता, वह सिर झुकाकर दौड़ा और 'कलपीठू' के सींगों से अपने सींग, उसके माथे से अपना माथा टकरा दिया। 'कलपीठू' कुछ पीछे को हटा, पर प्रहार को झेलकर टाँगों पर टिका रहा, और सबसे बड़ी बात तो टाँगों पर टिके रहने की है: अगर घुटनों तक पर भी गिरे तो दुश्मन झट से सींग छुड़ाकर अपनी आँखों के ऊपरवाली पैनी खूंटियाँ बगल में, दिल में भांक देगा - बस तब समझो खेल खतम। सींग से सींग, माथे से माथा भिड़ाकर जितना चाहो लड़ा जा सकता है, बस ताकत जवाब न दे जाये, बस गिरने की नौबत न आये। आसार तो यही थे कि लड़ाई लम्बी, चकनाचूर करनेवाली होगी पर हुआ यह कि अपना प्रहार करते समय

'कलपीठू' की टाँगों के नीचे ठूँठ आ गया और इस ठूँठ से अपनी टाँगों को मिली टेक के फलस्वरुप 'सुरमई नयन' पर ऐसा वार करने का मौका मिला कि टैगा के स्वामी के घुटने मुड़ गये। पर 'कलपीठू' को अपनी श्रेष्ठता का लाभ उठाने का मौका नहीं मिला। अपने लिए घातक खतरे को समझकर 'सुरमई नयन' झट से सम्भल गया और उसने ऐसी प्रचण्डता से प्रहार किया कि 'कलपीठू' घुटनों पर ही नहीं गिरा बल्कि उसका सन्तुलन बिगड़ गया और बगल पर गिरने लगा। प्रतीत होता था कि 'सुरमई नयन' झट से अपने सींग छुड़ायेगा और गिरते शत्रु की बगल में ऐसी चोट करेगा कि वह फिर कभी न उठ पायेगा। निःसन्देह होता भी यही पर अचानक न जाने क्यों 'सुरमई नयन' भी परास्त प्रतिद्वन्द्वी के साथ गिरने लगा, और अब दोनों ज़मीन पर पड़े ऐसे घरघरा और टाँगें चला रहे थे मानो दम तोड़ रहे हों।

यह सब समझ में न आ रहा था, पर लूवेन को ऐसा देखने का मौका मिल चुका था, पहले उसी की समझ में बात आयी, वह बेहद खुश होकर रस्सियाँ लाने के लिए तेजी से दौड़ा-दौड़ा गया: बात यह थी कि हिरणों के सींग आपस में उलझ गये थे और जब तक वे सुलझे नहीं या उन्होंने एक दूसरे को घायल न कर दिया उससे पहले ही हमें उनको बाँध लेना चाहिए था।

भाग्य ने भी क्या साथ दिया, ऐसी आश्चर्यजनक बात हो गयी!

पर यह भी कोई बात हुई जब भाग्य न मुस्कराये, और फिर दुर्भाग्य आता है, हमेशा से यही होता आया है... शुरु से ही

हमारा काम अच्छा चल निकला। हमने दो बढ़िया श्रृंगियों को बाँध लिया, हिरणों की संगम ऋतु का राजा 'सुरमई नयन' और उसका जानी दुश्मन 'कलपीठू' हमारे हाथ आ गये, लूवेन ने गड्ढे में चार जवान श्रृंगियों तथा दो हिरनौटों को और फँसा दिया।

10

मेरी समझ में तो ब्राह्ममुहूर्त की वेला आदमी को उस दैनन्दिन सुख के बदले मिलती है जब लोग सान्निध्य का जी भर रसपान करके या इसके विपरीत एक-दूसरे को तानों, ईर्ष्या, किसी अनिष्ट के पूर्वाभास से यातनाएँ दे-देकर या बीमार बच्चे के रोने-बिलखने से चूर होकर घोड़े बेच के सोते हैं। दुख-सुख के इस सामान्य क्रम से निःसन्देह मैं भी अछूता नहीं हूँ, पर यह सुख तो गृहस्थी का सुख है और ब्रह्ममुहूर्त की वेला में जो मुझे इस सुख के बदले मिली है, मैं प्रकृति की शक्तियों से मिलकर एक हो जाता हूँ और वह अदृश्य आम कार्य करता हूँ जिसके फलस्वरुप सुखी लोग सूर्य की किरणों से जागकर अक्सर उल्लास के साथ कहते हैं: "अरे, आज कितनी सुन्दर सुबह है!" और अब मैं, जिसे ब्रह्ममूहर्त की वेला में जीवनसम्बन्धी अटकलें लगाने का समृद्ध अनुभव प्राप्त है, पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि कोई भी सच्चा सुख ब्राह्ममुहूर्त की वेला में संसार की सभी शक्तियों के इस अगोचर और सर्वथा निःस्वार्थ संयुक्त कार्य पर आधारित होता है। मैं हमेशा लूवेन से भी काफ़ी पहले उठ जाता हूँ और किसी ठोस चीज़ पर कन्धा टिकाकर किसी बात की बाट जोहने और सोचने लगता हूँ जब तक कि कोई समाधान न आ जाये:

प्रकृति में दिन दो कुर्सियों की तरह हूबहू एक जैसे नहीं होते, दिन केवल एक ही बार आकर सदा के लिए चला जाता है। और जब ब्रह्ममुहूर्त की वेला में यह नया, गुणात्मक दृष्टि से अद्वितीय, अपूर्व दिन निरुपित होता है, मैं भी रौ में अपनी सोच में डूबा रहता हूँ। और जब मुझमें तारतम्य और वातावरण में आगामी दिन निरुपित हो जाता है, मैं काम पर रवाना हो जाता हूँ। वैसे ऐसा भी बेशक कभी होता है कि सुबह सारी गड्डमड्ड हो जाती है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता और विचारों में तारतम्य नहीं बनता और मेरा कुल्हाड़ा कल की तरह आज भी बस यंत्रवत ठक-ठक करने लगता है। वसन्त और ग्रीष्म के निरन्तर कोहरे के बाद पतझड़ में और जाड़े भर इस प्रदेश में आकाश का जीवन उस वेला में बड़ा अद्भुत और विलक्षण होता है जब धरती पर अभी झुटपुटा छाया होता है। इटली की धूप जैसे आलोक से सम्पन्न शीतकालीन आकाश को देखकर लगता है कि सूर्योदय के समय अनोखी प्रफुल्ल धरती का दृश्य खुलेगा पर साइबेरियाई पवन ने सब तबाह कर डाला, और यह सारा का सारा महाआलोक सागर की ओर अभिमुख हो जाता है और वह, पूरा का पूरा महासागर ही नीलाभ हो जाता है तथा नीलिमा की पृष्ठभूमि में विभिन्न चट्टानों की और चट्टानों पर पाइन वृक्षों की काली आकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, पाइन वृक्षों की, झंझावातों से जीवनपर्यन्त अथक संघर्ष करने वाले योद्धाओं की, जो सदा इतने विविध होते हैं कि एक जैसे दो कभी देखने को नहीं मिलते। फिर जब प्रकाश तेज हो जायेगा और नीलिमा पर

अनन्त सुनहरा मार्ग बिछ जायेगा तो थल पर भी मामूली से मामूली रंग भी, कोई बदरंग धब्बा तक अत्यन्त चटकीले फूल में बदल जायेगा। अब मेरे हरे-भरे द्राक्षमण्डप के स्थान पर, जहाँ कभी मेरी 'हुआ-लू' से भेंट हुई थी, केवल एक काला वृक्ष ही बचा है जिसकी टहनियों पर अंगूर की काली लताएँ लिपटी हैं, और वहाँ जहाँ उस तम्बू में मेरी खिड़की थी अब लता का फंदा लटका है और इस फन्दे में अंगूर की एकमात्र पत्ती फड़फड़ा रही है, शायद वह इतनी सुन्दर न भी हो पर प्रकाश में वह लहू की तरह लाल है। और पीली निर्जीव चरागाह में एजेलिया के पत्तों के तश्तरियों जैसे लाल अवशेषों के धब्बे इतने स्पष्ट और इतने सजीव दिख रहे हैं कि वे मारे गये हिरणों के तश्तरियों में भरे खून जैसे लगते हैं।

और लो सारी धरती प्रातः की धूप में नहा गयी, दोनों में अब तक दुबके हिरणों के चरागाहों के कोने दिखायी देते हैं - धूसर नलियों की तरह मुड़ी पत्तियों वाली बलूत की झाड़ियाँ - यह चीतलों का शीत आहार है जो उत्तरी मृगों की तरह खुरों से बर्फ़ खोदकर घास नहीं ढूँढ़ सकते। अगर लिण्डन और बलूत की इन झाड़ियों को बर्फ़ ने ढक दिया तो क्या होगा? तब हम सर्दियों में अपने हिरणों को क्या खिलायेंगे? इतना चिन्ताज़नक विचार आने पर कुछ किये बिना पेड़ से कन्धा टिकाये नहीं खड़ा रहा जा सकता। हम कुल्हाड़ियाँ उठाते हैं और टहनियाँ काटने चल पड़ते हैं..

लूवेन ने टैगा में खबर भिजवा दी और चीनी मजदूर हमारे यहाँ

आ गये। बाड़ाबन्द उकाब घोंसला अन्तरीप पर जहाँ अकेली 'हुआ-लू' स्वच्छन्द चर रही थी हमने चरनियों, बाड़े और श्रृंग काटने की कोठरी समेत हिरणशाला बनायी। हम दिन भर काम करते हैं और शाम को मैं श्रृंग काटने की मशीन की रूपरेखा बनाने के लिए हिसाब-किताब करता हूँ, लोहे, कीलों, तार की कमी के कारण मुझे ढेरों तरकीबें सोचनी पड़ती थीं ताकि हुकों, कब्जों और पेंचों के बिना काम चलाया जा सके। मुझे चीनियों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता कि वे कैसे ताश खेलते हैं: अगर किसी के पास लकी पत्ता आ जाता और वह बाजी जीत जाता तो वह जोड़ीदारों को पत्ता दिखाने का कष्ट तक न करता - वह बस सभी पत्तों को गड्डी में डाल देता और दाँव की राशि उठा लेता। कोई जाँचने की सोचता तक नहीं, धोखे की कोई सम्भावना ही नहीं थी। कितनी सुन्दर बात है यह। और अगर फिर भी किसी ने धोखा दे ही दिया तो धोखेबाज का हमारे यहाँ की तरह कान नहीं मरोड़ा जायेगा बल्कि उसे जान से मार डाला जायेगा, इसलिए मौत के डर से कोई भी धोखा देने की हिम्मत ही नहीं करता: यह तो कोई खास सुन्दर बात है नहीं... और भी ढेरों ऐसे तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं जिनका कोई समाधान नहीं मिलमा; कभी-कभी सोचता कि उनका इसलिए समाधान नहीं किया जा सकता कि परामर्श के लिए न पुस्तकें हैं न पढ़े-लिखे लोग; पर असलियत यह थी, मुझे बाद में इसमें विश्वास हुआ, कि पराये विचारों युक्त परामर्श के कारण ये प्रश्न कुछ समय के लिए दब जाते हैं, स्थगित हो जाते हैं पर हल नहीं होते: हाथ पर

हाथ धरे बैठकर ये प्रश्न हल करना असम्भव है - इन प्रश्नों को समाधान पूर्णतः काल के क्रमानुसार कार्य में निहित है। मुझमें और चीनियों में मुख्य अन्तर यह था कि मैं हर चीज़ का पूरा हिसाब-किताब लिखकर रखता हूँ, अपने हर कदम का आत्मविश्लेषण करता हूँ। उनके यहाँ सब विश्वास पर, सब याद पर आधारित होता है। ताकि ये सब लोग मुझे कप्तान कहें इसके लिए केवल यही काफ़ी है कि मैं हर चीज़ का हिसाब करके नोट करता रहता हूँ, हिरणशाला के, श्रृंग काटने की मशीन के छोटे-छोटे नक्शे बनाता रहता हूँ... पर क्यों? हाँ, ऐसे ढेरों प्रश्न हैं, इतने उग्र, उनका समाधान इतना आवश्यक लगता है पर पूछूँ किससे। मैं यह सही-सही जानना चाहूँगा कि मेरी कप्तानी की सत्ता की उत्पत्ति का मूल आख़िर क्या है। क्या यह सत्ता सम्पूर्ण विश्व के कप्तान यूरोप की शक्ति का अंश थी जिसे बहुत पहले से बाकी सभी देशों के ऊपर हिसाब-किताब करने, लिखने और सक्रिय होने की श्रेष्ठता प्राप्त थी या चीनियों की नज़र में मैं केवल इसीलिए कप्तान बन गया कि मैं, एक गोरा आदमी, उनकी नज़रों में पूँजी नाम के कप्तान का प्रतिनिधि हूँ... मेरे दिमाग में तरह-तरह के ढेरों प्रश्न आते हैं और उन्हें हल करने की असम्भावना के कारण कभी-कभी एकाकीपन की यातना, ऐसी तीव्र पीड़ा मुझे सताने लगती है कि मैं गिनने, लिखने और श्रृंग काटने की मशीनों के डिजाइन सोचने की क्षमता से वंचित हो जाता हूँ। ऐसे मौकों पर वृद्ध लूवेन सदा मेरी सहायता को आगे आता है, और वह भी प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बस मुख्यतः

अपनी मुस्कान से वह मुझे याद दिला देता है कि मेरे जीवन की जड़ सही-सलामत है, केवल कुछ समय के लिए उसका विकास रुक गया है, उस पर हिरण का खुर पड़ गया है; एक निश्चित समय बीत जायेगा और डण्ठल पर लगा उसका फूल ज़रूर उग आयेगा। कभी-कभी इसके बारे में इतने मनोयोग से देर-देर तक सोचता रहता हूँ कि जीवन की यह जड़ एक किंवदन्ती बनती जा रही है, मेरी रग-रग में दौड़ रही है, मेरी शक्ति बन रही है और अचानक तीव्र पीड़ा का स्थान ऐसा ही तीव्र हर्ष ले लेता है। और मुझे लूवेन को भी और सभी चीनी मज़दूरों को भी किसी तरह हर्ष प्रदान करने की इच्छा होती है। 'मेरा-तेरा' की वीभत्स भाषा में मैं लूवेन को यह सिद्ध करने का प्रयास करता हूँ कि पूर्वी लोगों को भी हिसाब-किताब लिखने की आवश्यकता है ताकि अपना सब कुछ अपने लिए सुरक्षित रखकर वे भी कप्तान बन जायें। अपनी नेकी के सहारे लूवेन चिड़ियों को भी और जानवरों को भी समझता है पर केवल मुझे ही नहीं समझ पाता।

"तेरा गिन," काग़ज़ की ओर इशारा करके वह कहता है, "तेरा यह सौभाग्य है?"

"हाँ-हाँ, बेशक, समझ के साथ।"

"पर मेरा गिनना समझता नहीं, हमारा तेरा मदद करेगा, ये ही अच्वा होगा, अच्वा, भौत-भौत दवा होगा! तेरा गिन, हमारा तेरा मदद करेगा!"

11

जब संगम ऋतु समाप्त हो गयी और अन्तिम हिरणी ब्याहकर धुँधली पहाड़ी के अपने कन्दर में जाड़ा बिताने चली गयी तो चिंघाड़ते, मादा की खोज में निरन्तर भटकते, भुखमरी और एक-दूसरे के प्रति घृणा से बेहाल श्रृंगी अब जैसे मानो कुछ हुआ ही नहीं, छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर वीभत्स बीमारी का इलाज करने के लिए ऊँचे पहाड़ों में देवदार के वनों की ओर रवाना हो गये। उसी समय हमने अपने बन्दियों को हिरणशाला के थानों से आँगन में छोड़ दिया और वे सब, कुछ समय पहले तक के जानी दुश्मन एक विशाल खोखले तने से बनी लम्बी नाँद में शान्ति के साथ चारा खाने लगे। सब यहीं थे - हिरणों का राजा बलवान 'सुरमई नयन'; आँखों में अपनी काले मंसूबे छिपाये चिड़चिड़ा 'कलपीठू'; कमानी जैसे चुस्त-दुरुस्त बदन और चीतलों में बेहद विरली बड़ी-बड़ी बादामी आँखोंवाला तीन साल का जवान हिरण 'छैला'; नाटा पर गठीला और बेहद भला 'झपकू': अगर उसकी नज़र से नज़र मिलायी जाती तो वह हर बार आँखें झपकने लगता' 'ढिल्लू' और 'खड़सीगू' - वे शायद सगे भाई थे: सब हिरणों की चित्तियाँ बेतरतीब बिखरी होती हैं पर इनकी सफ़ेद चित्तियाँ लाल खाल पर सीधी रेखाओं में बनी थीं, शायद, ऐसी किसी हिरणी ने उन दोनों को जन्मा होगा। सब तरुणों को, साल-साल के सभी हिरनौटों को न जाने क्यों हमने मिशूत्का नाम दे डाला। हिरणों का बाड़ा इतना छोटा नहीं था, आकार भी उसका चौकोर न था क्योंकि हमने वहाँ लगे पेड़ों से खम्भों का काम लिया था। और अहाते में भी हमने एक भी पेड़

नहीं काटा ताकि गर्मी में हिरण उसकी छाया में शरण ले सकें। इसके लिए भी पेड़ बचे थे ताकि ज़रूरत पड़ने पर उनके बीच त्रिभुजाकार में डण्डे ठोके जा सकें, और तब सारा अहाता ऐसे त्रिकोण में बदल जाता जिसका शिखर थानोंवाले सँकरे गलियारे की ओर होता, बस त्रिकोण के आधार में हिरणों को हाँकते ही वे सब के सब सीधे थानोंवाले गलियारे में घुस जाते। गलियारे के सिरे पर श्रृंग काटने की मशीन थी। यह एक ऐसे बक्स की तरह थी जिसकी पेंदी हटायी जा सकती थी, हिरण उसमें गिर जाता और बगलों से उसे टेक के तख्ते सँभाले रहते, टाँगें, उसकी हवा में लटकी रहतीं। इस प्रकार हरेक हिरण को किसी भी समय श्रृंग काटने के लिए या वजन तौलने के लिए पकड़ा जा सकता था।

बाड़े, सींग काटने की मशीन से सम्पन्न हिरणशाला के निर्माण के लम्बे और काफ़ी शोरगुल भरे चीनी मज़दूरों के काम के कारण 'हुआ-लू' को पालतू बनाने में बहुत खलल पड़ रहा था; उस समय के दौरान वह अपने मिशूत्का के साथ कहीं चट्टानों के ढेर में चली गयी थी जहाँ वह अन्तरीप के ऐन सिरे पर चीड़ के पेड़ों के बीच छिपी हुई थी। वहाँ मैंने उकाब के घोंसले को कब का उजाड़ दिया था ताकि हिंस्र पक्षी हिरणों को न बिदकायें जो डर के मारे कोई भी बाधा तोड़कर भाग सकते हैं। और जब अन्तरीप पर हिरणशाला का काम पूरा हो गया और फिर से शान्ति छा गयी, मैं वहाँ, चीड़वाली चट्टानों में सोयाबीन के दानों से भरी छोटी नाँद और बलूत की टहनियों के कुछ गुच्छे रख

आया। चट्टानों में कुछ खाने को था नहीं, 'हुआ-लू' बेहद भूखी थी और निःसन्देह पहली ही रात को वह सभी दाने और टहनियाँ चट कर गयी। तब मैंने नाँद को हिरणशाला की ओर कुछ सरका दिया और उसमें दाने डाल दिये तथा कुछ देर तक भुर्ज की छाल का बिगुल बजाया। शीघ्र ही वह खुलकर आने लगी, मैं चाहे जितनी देर तक बिगुल बजाता रहता, वह खड़ी-खड़ी सुनती रहती। मैं यह तक सोचने लगा कि बिगुल का संगीत सुनने में उसे आनन्द आता है, पर एक बार जब मैं बजा रहा था, वह साहस करके नाँद के पास आ गयी और सिर झुकाकर खाने लगी; उस दिन से इस बात पर ध्यान दिये बिना कि मैं बजाता होता या यूं ही खड़ा देखता होता, वह रोज़ खाने लगी। धीरे-धीरे मैं उसे लगभग हिरणशाला तक ले आया, मैंने नाँद को बाड़े में खुले फाटक के बिल्कुल पास रख दिया, पर मेरे लाख बिगुल बजाने के बावजूद भी वह अन्दर घुसने का साहस न कर सकी।

पर उसके साथ यह झमेला ज्यादा देर तक नहीं करना पड़ा। ऐसा मौसम आ गया था कि कोई भी आज़ाद हिरण, अगर उसे पता होता कि हमारे बन्दी कैसी परिस्थितियों में रहते हैं, खुद यहाँ आकर उसे सोयाबीन से भरी नाँद के पास आने देने की मिन्नत करता। एक ऐसा दिन आया जब हमारे यहाँ अचानक जाड़ा आ धमका। शाम की बात है, मुझे ऊँचे कगार पर हिरणों जैसी चट्टानों का एक समूह दिखायी पड़ा, मैं इन मूर्तियों को पहाड़ों में प्रकाश और छाया की माया समझकर उनका रसास्वादन करने लगा: वहाँ तीन वयस्क हिरण, दो हिरणियाँ,

एक श्रृंगी और दो हिरनौटे दिख रहे थे। ये सब ऊँचे-नीचे सिर सांध्य आकाश की पृष्ठभूमि में मोर की दुम की तरह फैले थे। अचानक उनमें से एक हिरण जैसी चट्टान हिली, यही नहीं, यहाँ, नीचे तक हिरण की हल्की-सी सीटी उड़ती आयी। सचमुच इतनी ऊँचाई पर ये हिरण ही निकले, खड्ड के दूसरे चट्टानी कगार पर भी हिरण थे, धुँधली पहाड़ी के कन्दरों के ऊँचे कगारों पर भी, झुटपुटे में सर्वत्र पहाड़ों में विलीन हिरण ही हिरण थे। पहाड़ों पर हिरणों को देखकर लूवेन फौरन हमारी फ़ान्ज़ा के सरकण्डों के छप्पर पर बिछे जाल को कसने में जुट गया: उसे पक्का विश्वास था कि अगर शाम को हिरण पहाड़ पर निकले तो कल मौसम बिगड़ जायेगा। मैं भी किसी धुँधले-से पूर्वाभास के कारण प्रकृति में किन्हीं घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे यह अस्वाभाविक और भयावह लग रहा था कि पिछले कई दिन एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न नहीं थे, वे मानो आइने में एक ही दिन के प्रतिबिम्ब मात्र थे: इतने सुस्त, शान्त तुषार पड़ रहा था, आकाश खुला था और यह देखकर सिहरन दौड़ जाती कि आखिर इस बिल्कुल निर्जीव, पीलापे से पुती मरुभूमि के ऊपर तो बयालीसवें अक्षांश का प्यारा इटालवी सूरज चमक रहा है! निर्जन, सुनसान धरती, अज्ञात प्रकृति! मुझे लग रहा था मानो मैं अनन्त क्रान्ति के देश में पहुँच गया, जहाँ वसन्त का सूर्य पेड़ों में रस का संचार करवा देता है और शाम को धोखा खाया रस पाले के कारण जम जाता है और नीचे से लेकर ऊपर तक पेड़ चटककर फट जाता है। दसियों सालों तक, क्या पता सदियों

तक ही बलिष्ठ पेड़ चट्टान की ओट में छिपे रहे और अचानक चट्टान टूट गयी, रोड़ी का ढेर बनकर बिखर गयी और तूफ़ान ने पेड़ों को माचिस की तीलियों की तरह उड़ा दिया। और बाढ़ें क्या-क्या कर डालती हैं। और यह कितना अजीब लगता है कि मानव को, प्रकृति के सबसे बुद्धिमान जीव को, कल के दिन के बारे में हिरण से पूछना पड़ता है।

सुबह को ब्रह्ममुहूर्त की वेला में आतुरता के साथ यह देखने बाहर निकला कि हिरणों ने क्या भविष्यवाणी की थी। और जब दिन निरुपित होने लगा तो अचानक मेरे पाँव तले ज़मीन ऐसे ही खिसक गयी जैसे श्रृंग काटने की मशीन में हिरण के नीचे से, सब दिशाएँ, सब ऋतुएँ गड्ड-मड्ड हो गयीं: काफ़ी गर्मी हो गयी थी, ग्रीष्म मेघ प्रकट हुए - सफ़ेद-श्वेत, फिर काली, सुन्दर-सुन्दर, प्यारी-प्यारी घटाएँ आयीं और हमारे यहाँ की तरह गरज और बिजलियों की चमक के साथ बढ़िया बारिश, जैसी यहाँ पूरी गर्मियों में भी अनदेखी होती है। और शाम तक यही चलता रहा। लगता था कि हिरणों ने धोखा दे दिया, पर शाम को अचानक बड़ी ठण्ड हो गयी, बालटियों में भरा पानी जम गया और बर्फ़ का तूफ़ान शुरु हो गया।

पर पहाड़ों की तो माया देखो! हमारे खड्ड की ऊँची-ऊँची चट्टानी दीवारों के बीच अपनी फ़ान्ज़ा में हम चैन से आग के पास बैठे थे, गरज और चीत्कार तथा गिरती चट्टानों की खास गड़गड़ाहट सुन रहे थे: समुद्र के पास जोर की गड़गड़ाहट हुई और हमें पगडण्डी के ऐन ऊपर लटकी चट्टान का ख्याल आया। और

कभी अचानक बिल्कुल शान्ति छा जाती, मानो विराट तूफ़ान-अजदाह हमारे ऊपर से उड़ता जा रहा था और उसकी दुम गुजर गयी और शान्ति छा गयी। इस दौरान समुद्र अपनी भव्य, भूमिगत-सी गर्जना के साथ तट पर बटिया - अपने असंख्य गोल, पेंदी पर पड़े पत्थरों को ठेलता और शीघ्र ही इस बटिया को वापस ले जाता और वह असन्तोष के साथ बड़बड़ाती ठुनकती। समुद्र इस तरह कोई दस बार बटिया को लाया-ले गया होगा कि फिर से सनसनाता, भयंकर फुफकार करता तूफ़ान-अज़दाह लौट आया और हमारे ऊपर अन्धकार में बड़ी देर तक उड़ता रहा जब तक समुद्र की ओर से फिर से गर्जना और बड़बड़ाहट न सुनायी दी: बटिया तट पर आती और वापस समुद्र में खिंची चली जाती और तूफ़ान इतने में वापस मुड़ रहा होता था..

अगर ये भले पहाड़ न होते तो हमारे साथ हमारी यह फ़ान्ज़ा फेजेंट के पंख की तरह उड़ जाती और सब हिरण भी और तेदुएँ भी, बाघ भी उड़ जाते। पर पशुओं को पहले से ही खतरे का भान हो गया था और वे हवा से छिपे स्थानों पर जाने लगे थे। वहाँ हिरणों की पनाहों में वे आराम से खड़े होते, यहाँ हवा बिल्कुल भी नहीं पहुँचती, उनके पास कुछ करने को होता नहीं इसलिए पेड़ों की टहनियाँ ही तोड़ने लगते। पहाड़ों में शिकार के समय मैं कई बार हिरणों की इन पनाहों को देख चुका था, तुड़ी-मुड़ी टहनियों और कुटी-मिट्टी की बदौलत मैं दूर से ही उन्हें पहचान लेता। बेशक, हमने भी यह ध्यान में रखा और

हिरणशाला ऐसे ही बनायी कि हिरण हमारे तूफ़ान की चपेट में न आयें। पर 'हुआ-लू' के बारे में सोचकर डर लगता था - उकाब घोंसला अन्तरीप हवाओं के लिए पूरा खुला था, बस पनाह लेने की एक ही जगह थी, वहीं हमारी हिरणशाला थी और वह केवल उसी में शरण ले सकती थी।

ब्रह्ममुहूर्त की मेरी वेला ने उस बार मेरी आँखों को धीरे-धीरे धवलता का अभ्यस्त होने में सहायता दी पर फिर भी बाद में इतालवी सूरज की धूप में बर्फ़ की चमक आँखों के लिए असहनीय हो रही थी। चाहे प्रचण्डता कम हो गयी थी पर अभी तूफ़ान जारी था और हमारे लिए हिरणशाला जाकर 'हुआ-लू' को बचाना ज़रूरी था। हम टीलों के बीच से जा रहे थे, हवा से ठीक उसी तरह लुकते-छिपते जैसे शिकार के समय पशुओं से, और हमारे इतने अजीब-से पदचिह्न बर्फ़ पर छूटते जा रहे थे। क्या पता कहीं भूखा बाघ भी बाहर निकला हो और बर्फ़ पर अपने पंजों के निशान छोड़ता चल रहा हो? या बर्फ़ पर अपने निशान देखने के लिए आतंक की बनिस्बत भूखों मरना बेहतर समझता था? सहज ही, बर्फ़ खड्ड-खाइयों में जमा हो रही थी, खुले स्थानों पर पहले की तरह ही पीला पहाड़ी नरकट हिलोरे ले रहा था पर इन स्थानों को पार करना हमारे लिए दूभर हो रहा था: हम उन्हें छिपकलियों की तरह रेंगकर पार कर रहे थे, हालाँकि रेंगते समय तूफ़ान हमें पकड़ तो लेता पर ज़मीन से हमें उठाने की उसमें शक्ति न थी। अन्तिम खुले स्थान से हमें पूरा का पूरा उकाब घोंसला अन्तरीप दिखायी पड़ा और हमें अपने

हिरणों को हिरणशाला में छिपे देखकर खुशी हुई और 'हुआ-लू' अपने मिशूत्का के साथ हिरणशाला के सामने खाई में ऐसे खड़ी थी मानो प्रतीक्षा कर रही हो कि कोई फाटक खोलकर उसे अहाते में घुसने दे। जब हमने फाटक खोलकर अंदर प्रवेश किया तो उसने अपने कान तक न हिलाये। मैंने उसकी इतनी जानी-पहचानी नाँद ली, उसमें सोयाबीन के दाने भरे और अहाते के बीचोबीच रख दी। फाटक से रस्सी का एक सिरा बाँधकर, ताकि उसे खींचकर फाटक बन्द किया जा सके, मैं और लूवेन खाली थान में घुस गये और रोशनी के लिए खिड़की खोल ली। मैं अपने भुर्ज के बिगुल को इस झरोखे की ओर मोड़कर बजाने लगा और लूवेन रस्सी का सिरा पकड़े खड़ा था ताकि मेरा हुक्म मिलते ही उसे खींच ले। बिगुल की आवाज़ सुनते ही 'हुआ-लू' की आँखों में नरमी आ गई और वे सिमट गयीं, कान उसके, जो प्रायः इतनी सख्ती से खड़े थे, यूँ ही इधर-उधर लटक गये। गर्दन तानकर वह नथुनों में हवा भरने लगी और उसने पहला छोटा-सा कदम रखा। मैं कुछ देर और बजाता रहा, वह एक कदम आगे बढ़ी, फिर और एक, एक और। फाटक पर वह ठिठककर खड़ी हो गयी और सोच में डूब गयी, मैंने जान-बूझकर बिगुल नहीं बजाया ताकि उसे बुलाने की इतनी आदत न पड़ जाये। स्वयं दाने उसे बिगुल से ज्यादा बुला रहे थे, अब तो वे उसे अच्छी तरह दिखायी दे रहे थे। कुछ चुप रहने के बाद मैंने फिर बिगुल बजाया और इसने सारा फैसला कर डाला: वह चली, नाँद के पास आयी, उसने कुछ खाया और तभी मैंने लूवेन

को इशारा किया। उसने सावधानी के साथ रस्सी खींची और फाटक बिना किसी शोर के बन्द हो गया। उसे तो, बेशक, सुनायी पड़ गया, उसने मुड़कर देखा, कान उसके खड़े हो गये। उसे यह तनिक भी अजीब न लगा कि अब फाटक बन्द था, उसे तो बस, एक ही सवाल सता रहा था - क्या बेखटके ये दाने खाये जा सकते हैं या नहीं? और जब उसे इसमें विश्वास हो गया तो उसने फिर से अपना सिर नाँद पर झुका लिया और अपने काले-काले होंठों से थोड़ा-थोड़ा करके स्वादिष्ट पीले दाने उठाने लगी।

12

जाड़ों में मुझे कई बार जाकर यह देखने की इच्छा हुई कि सर्दियों में जिन्सेंग कैसा होता है। उपोष्ण प्रदेश की कोमल से कोमल वनस्पतियों में से इस कोमलतम वनस्पति के हिमाच्छादित जीवन की मैं बड़ी कठिनाई से कल्पना कर पाता। यह जड़ दक्षिणी जलवायु में ऐसे भयंकर परिवर्तन को कैसे झेल पाती है? मुझे हिमाच्छादित गाती घाटी को भी देखने, पक्षियों और ग्रीष्मकालीन संगीतकारों - टिड्डों - के बिना उसकी निःस्तब्धता को सुनने की उत्कट इच्छा होती थी, पर सर्दियों में हिरणों की देखरेख का इतना काम होता था कि मैं जाने का मौका निकाल ही न पाया। हम चारा डालने और थानों की सफाई का काम करते थे। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि वह गंदा काम मेरे लिए दूभर, उबाऊ था। ‘हुआ-लू’ के प्रति मेरी विशेष भावना कभी मरी नहीं, मानो यह केवल हिरणी ही नहीं

बल्कि फूल भी थी और वह भी एक खास, मेरे निजी, अभी तक न निखरे व्यक्तित्व की खुद मेरे लिए अभी तक अबोधगम्य सम्भावनाओं से जुड़ा फूल। और बाकी अन्य हिरण भी और यह उदित होता नया, महान कार्य भी मेरा अपना निजी कार्य था, इसके साथ ही तब अपने लिए मैं उससे कोई अपेक्षा नहीं करता था और हमारी भावी आय को लूवेन की तरह, मैं भावी, मुझे अभी अज्ञात लोगों के लिए दवा के रूप में देखता था। स्वयं मेरे लिए तो मेरा निजी काम ही दुनिया में सबसे बढ़िया दवा थी। कभी-कभी मैं घण्टों-घण्टों बैठा 'हुआ-लू' को ताकता रहता कि कैसे वह अपने कानों को विभिन्न दिशाओं में मोड़ती और फिर मैं भी उस दिशा में देखता जहाँ से उसे कुछ सुनायी पड़ता, यह होता कि मै बड़ी देर तक देखता रहता जब तक कि मुझे खुद को यह दिखायी न देता। कभी ऐसा होता कि ऊपर से कोई उकाब उड़कर जाता या, कहीं पास से भेड़िया गुजरता और तब आँखों के नीचे उसकी लम्बी अश्रु-ग्रंथियाँ फैल जातीं और इसके कारण उसकी वैसे भी सुन्दर, बड़ी-बड़ी आँखें बहुत चौड़ी हो जातीं। अब मैं 'हुआ-लू' को किसी भी समय न केवल कानों के बीच सहला सकता था बल्कि मैंने उसे हमारी लाइबा का भी आदी करवा दिया: हिरणों की आम चराई के समय कुतिया हमेशा अहाते ही में रहती थी। सब हिरण बड़ी जल्दी ही उसके आदी हो गये और उसकी ओर कोई ध्यान न देते थे। अपने मिशूत्का के कारण अकेली 'हुआ-लू' ही लाइबा के प्रति इतनी उदासीन न थी। वह बहुत अच्छी तरह समझती थी कि लाइबा हिरनौटे

को कुछ करने की हिम्मत नहीं करेगी, पर माँ की सहज वृत्ति उसे खाने के समय निरन्तर कुतिया पर तिरछी नज़र रखने को बाध्य करती थी। और मौका देखकर वह हमेशा कुतिया को अपने से दूर भगाने की कोशिश में रहती। पर लाइबा इतनी चपल थी कि हिरणी कभी भी उसको अपने पैने खुर से मारने में सफल न होती। बस एक बार ऐसा हुआ, लाइबा को पिस्सू ने काट लिया और जैसा कि परिस्थिति में सभी कुत्तों के साथ होता है, वह सुध-बुध खोकर, क्रोध में अपना सारा ध्यान एक पिस्सू पर केन्द्रित करके, नाक सिकोड़कर पेट पर दाँत फेरते हुए पिस्सू को पकड़ने लगी, उसकी पिछली टाँगें उठी हुई थीं। बस, 'हुआ-लू' ने यह देख लिया, वह दौड़ी-दौड़ी कुतिया के पास आयी और अगली टाँग उठायी...उसी क्षण सारे हिरण, 'झपकू', 'ढिल्लू', 'खड़सींगू', 'छैला', 'सुरमई नयन' तक, 'कलपीठू' तक भी खाना छोड़कर कौतूहल के साथ देखने लगें तब तक मैं उनकी हँसी को समझने लगा था, वह गालों पर नहीं होती, बल्कि आँखों में कुछ चमकता है, तब 'हुआ-लू' की आँखों में यह शरारतपूर्ण भाव विशेष रूप से स्पष्ट दिखायी दे रहा था जब उसने अपनी टाँग उठाई और आनन्द के साथ हल्के-से लाइबा को ठोकर मार दी। अरे, क्या बताऊँ, यह तो देखने वाली बात थी!

जाड़ा पाले के कारण इतना भयंकर न था, जितना कि प्रचण्ड शीत हवाओं के कारण। न पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ़ टिक पाती न कटकों पर, प्रचण्ड आँधियाँ और तूफ़ान उसे उड़ा देते। पर खाइयों, खड्डों, कन्दरों और पर्वतीय घाटियों में बर्फ़ बहुत थी

और बर्फ़ पर निशानों की बदौलत ही मैंने एक बार लाल भेड़ियों के हमले की साजिश का भण्डाफोड़ कर दिया और सीसे से उनकी आवभगत की। एक बार बर्फ़ ने मुझे बताया कि उसी व्याघ्र कन्दर में जहाँ मैंने तेंदुए को मारा था, उसकी मादा दो शावकों के साथ रहती थी। एक बार एक पेड़ के ऊपर जमी बर्फ़ की पपड़ी ने मुझे बताया कि उसके कोटर में भालू सो रहा है - वह छोटा-सा, सफ़ेद छातीवाला निकला। एक बार बर्फ़ पर बाघ के पंजों के निशान भी देखने को मिले।

जब तेज़ हवाओं के साथ कड़कता जाड़ा पड़ने लगा तो सारे हिरण उत्तरी ढलानों से दक्षिणी धुपहली ढलानों पर आ गये और यहीं बलूत की झाड़ियों में चरते थे। अगर उन्हें उत्तरी मृगों - रेनडियरों - की तरह खुरों से हिम खोदकर सूखी घास निकालना आता तो उनके लिए बस चिकनी पपड़ी जैसी बर्फ़ ही दुष्कर होती। पर ये अवशिष्ट जीव शायद कड़ी जलवायु में पूरी तरह नहीं ढल सके और गहरी बर्फ़ के ढेरों में जिनमें झाड़ियाँ डूब जाती हैं वे असहाय हो जाते हैं। उन्हें कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। वसन्त के आने तक कोई एक-आध हफ्ता और काटना था पर एक गाभिन मादा न काट सकी, वह भुखमरी की शिकार हो गयी। अगर वह गर्भवती न होती तो निःसन्देह वह ज़िन्दा बच जाती। मैंने बाद में देखा कि इस तरह बूढ़ी हिरणियाँ अकसर गर्भ के कारण मौत को गले लगा लेती हैं: इस अन्तिम, घातक प्रयास से ये जीवन मानो सभी जीवधारियों को मरते दम तक अपनी वंशवृद्धि करते रहने का उपदेश देते हैं।

जब वसन्त के पहले कोहरों के बाद ऊपर के खुले स्थान बर्फ़ की पपड़ी से मुक्त हो गये और वहाँ स्वादिष्ट काई निकल आयी एक युवा हिरणी वहाँ चरने के लिए पहुँच गयी और समुद्र की ओर शिला की तरह निकले हिमपिंड पर चढ़ गयी। वसन्त के उष्म कोहरों से भुरभुरा हिमपिण्ड ढह गया, पर अगर वहाँ बर्फ़ की चिकनी पपड़ी न जमी होती तो चपल हिरणी अगली टाँगों के बल ही अपने शरीर को ऊपर उछाल देती। अब तो बर्फ़ीले कगार पर खुरों की खरोंचें ही बची थीं। ऊपर से गिरी समुद्र के किनारे पत्थरों पर मरी पड़ी थी: लोमड़ियों, बिज्जुओं, रैकूनों का भोज, क्या पता कोई अष्टभुज ही उसे चट कर जाये।

जाड़े और गर्मियों के बीच के इस कठिन अन्तरिम काल में ढेरों जीवनों का अन्त हो गया। एक हिरणी पिछली टाँगों पर खड़ी युवा बलूत की सूखी पत्तियाँ खा रही थी। शायद बर्फ़ की चिकनी पपड़ी पर उसकी पिछली टाँगों के कड़े खुर फिसल गये और गिरते समय हिरणी की गर्दन पेड़ की गुलेलनुमा डाल में फँस गयी, मुझे वह इसी हालत में लटकी हुई मिली। एक और दुर्घटना देखी थी, श्रृंगी बलूत की झाड़ी के ऊपर से कूदा। घनी झाड़ी में से हिरण का शरीर तो निकल गया पर खुरों के पास पिछली टाँगें फँस गयीं। जी हाँ, उनके साथ बड़ी दुर्घटनाएँ होती हैं, पर जैसा कि मैंने ध्यान दिया डर के कारण ही हिरण सबसे अधिक मारे जाते हैं..

वसन्त यह बारिशों और कोहरे की ही ऋतु है। कभी-कभार, पल दो पल के लिए ही सूरज दर्शन देता है और इतने कम समय में

ही ढेरों मुसीबतें खड़ी कर जाता है: उसकी गर्मी के धोखे में आकर पेड़ जाग पड़ते हैं और शाम को उनकी रगों में दौड़ता रस जमकर लकड़ी को फाड़ देता है।

पहाड़ों में कोहरे से छिपी बर्फ़ अदृश्य रूप से पिघलकर धाराओं में बँटकर बहने लगती है। फिर अदृश्य रूप से घनी घास उगती है। और कानों के सहारे ही पक्षियों के महान प्रव्रजन का अनुमान लगाया जा सकता है। एक-दो हफ्ते बेहद घने कोहरे में बीत जाते हैं, फ़ान्ज़ा के अलावा कुछ नहीं दिखायी पड़ता और अचानक कोई सौभाग्यशाली दिन आ जाता है: सूर्य की किरणों में नहाये हरियाले टीले दिखायी देते हैं और अब तक छायी नीरवता भंग हो जाती है - अचानक चारों ओर से फ़ेज़ेण्ट चिल्ल-पों मचाने लगते हैं।

हिरणों के पुराने सींग झड़ने लगते हैं। मजबूत श्रृंगियों के सींग पहले झड़ जायेंगे पर नये सींग भी उनके जल्दी उगने लगेंगे और संगम ऋतु से पहले ही से वे तैयार हो जायेंगे। सर्दियों में लूवेन ने कई बार मुझे किसी अमर हिरण के बारे में बताया जिसके सींग मानो कभी नहीं बदलते। लूवेन की सभी किंवदन्तियाँ और कहानियाँ मुझे इसलिए प्रिय थीं कि उनमें सत्य का कोई बीज होता था; हमेशा उसकी किंवदन्तियों को सुनकर मैं उन्हें अपनी समझ के अनुसार बनाने, उनमें निहित अपने लिए लाभकारी गूढ़ार्थ को निकालने का प्रयास करता। अमर हिरण के साथ भी यही बात हुई। जब सभी हिरणों के सींग झड़ गये और हिरणियाँ ब्याने लगीं और ऐसे किसी हिरण की कल्पना ही करना असम्भव

था जिसके अस्थिकृत सींग हों एक दिन मैंने पहाड़ी से क्या देखा - चरागाह में बड़े-बड़े शाखी सींगोंवाला एकाकी अमर हिरण चर रहा था। मुझे हिरण की अमरता के रहस्य को सुलझाने की ज़रूरत थी और इसलिए मैंने जिसने कभी भी चीतलों पर गोली न चलाने का संकल्प कर रखा था इस बार उस पर दया न की। और अपनी गोली छोड़ दी। तब न झड़ने वाले सींगों का रहस्य फौरन खुल गया: शायद पतझड़ में संगम ऋतु के समय किसी द्वन्द्व में इस श्रृंगी को अपनी यौनेंद्रिय से हाथ धोना पड़ गया था और नीचे से पुराने सींगों की ओर प्रवाहित होता नया जीवन रुक गया, नये जीवित श्रृंग नहींउगते थे और मृत, अस्थिकृत पुराने सींग नहीं बदले। पर वहीं अमरता देखना सबसे सरल होता है, जहाँ बदलाव नहीं होता और पुराने में सब कुछ मृत अस्थि-शेष बनकर ही रह जाता है। हाँ, मृत, अस्थिकृत स्थायी सींग ही शायद अमरता का सभी के लिए अत्यधिक बोधगम्य और सत्य सदृश रूप है। बेशक मैंने जाकर लूवेन को सब बता दिया और खस्सी हिरण के हड्डियों के सींग और घाव के निशानवाला वह सफाचट स्थान दिखाया। निःसन्देह लूवेन ने यही कहा कि यह वह हिरण नहीं है, अमर तो अमर ही होता है और गोली से उसे नहीं मारा जा सकता। मेरे मन में तब यह कड़वा विचार कौंधा कि अपनी किंवदंतियों से घिरा लूवेन खुद अस्थिकृत सींगोंवाले उस हिरण जैसा है कि जिसके सींग नहीं बदलते। मेरा मन इसलिए कड़वाहट से भर गया कि अनायास ही, और बिना किसी खास, मुख्य बात के, बिना किसी ठोस कारण के मैं इस

श्रेष्ठ मानव की संगति से वंचित हो गया, यहाँ हमारी राहें अलग हो गयीं और मैं अकेला रह गया और उत्तम मानव के साथ मेरी वही हालत थी जो पशुओं के बीच होती है: उनसे चाहे कितना ही प्रेम क्यों न करो, कितनी ही घनिष्ठता क्यों न बनाओ पर फिर भी उनके बीच तुम अकेले ही रहोगे और अपनी परम निधि का, जो सम्भव है कि अपनी आवश्यकता से ज्यादा हो, उनके साथ आदान-प्रदान नहीं किया जा सकता।

निःसन्देह, स्वतंत्र विचरने वाले हिरणों की तरह हमारे हिरणों के भी सींग एक-एक करके झड़ रहे थे। सबसे पहले 'सुरमई नयन' के झड़े, उसके बाद शीघ्र ही 'कलपीठू' के, फिर 'झपकू', 'छैले' और 'ढिल्लू' व 'खड़सींगू' बन्धुओं के। सींग झड़ने के बाद की बात है, 'झपकू' एक बार मेरे पास अपनी खास चीं-चीं करता आया और उसने अपना सिर ऐसे झुकाया मानो अपने नदारद सींगों पर मुझे उठानेवाला हो। मैंने उसके सींगों के गूमड़ों को खुजला दिया: मुझे लगा कि उसे वहाँ ज़रूर खुजली हो रही होगी। उसे यह बहुत अच्छा लगा। दूसरी बार वह दूर से ही मुझे देखकर चीं-चीं करता दौड़ पड़ा और मुझे लगभग गिरा ही दिया। मैंने उसको खुजला दिया और हम अपनी-अपनी राह चले गये। पर तीसरी बार जब उसे इसका चस्का पड़ चुका था वह ऐसे दौड़ा आया मानो हुक्म दे रहा हो: चाहता है तो खुजला दे, अगर नहीं तो मैं खुद खुजला लूँगा। बेशक, मैं उस ढीठ का कहना कहाँ माननेवाला था और उसने मेरे बदन से खुद सींग खुजलाने की इच्छा से मुझे इतनी ज़ोर से अपने माथे से धक्का मारा कि

मैं दूर बाड़ के पास जा गिरा। अब मेरी तुच्छता को समझकर 'झपकू' मेरी ओर लपका, बेशक, मुझे वह एक बार और ऐसे मारता कि मैं फिर कभी उठ ही न पाता। पर उसी क्षण जब उसने वार करने के लिए सिर झुकाया, मैं अपनी स्थिति को समझ गया, मैंने झट से अपने बायें हाथ से खुर के ऊपर उसकी दायीं टाँग को पकड़ लिया और दायें हाथ से उसकी बगल में ऐसा जबर्दस्त घूँसा मारा कि वह लुढ़क गया। यही नहीं! मैंने बाड़ से खूँटा उखाड़ लिया था और फिर मैंने उसकी जो धुनाई की कि तब से वह हमेशा के लिए सीधा हो गया। वह पहले की तरह आँखें झपकता था, सीटी बजाता था, सींगों के गूमड़ खुजलाने देता था, पर मुझे उसे उँगली से धमकाने की देर थी कि वह चुपचाप चला जाता था। दूसरे हिरण जंगली ही रहे और अपने पास नहीं आने देते थे।

तौलने का काँटा बनाने के लिए मुझे बड़ा सिर खपाना पड़ा, पर अन्ततः मैंने उसे बना ही डाला और काँटे को श्रृंग काटने की मशीन से जोड़ दिया। जब हिरण उस बक्स में घुसता, मैं लीवर दबा देता और मशीन की पेंदी काँटे का पलड़ा बन जाती। परीक्षण के लिए मैंने दो बिल्कुल एक जैसे हिरणों - 'ढिल्लू' और 'खड़सींगू' को चुना। 'ढिल्लू' को मैं सुअर की तरह, जितना वह खा सकता उतना पौष्टिक चारा खिलाता। उसी के तौल के दूसरे हिरण को मैं सभी की तरह सामान्य चारा डालता था। मेरे परीक्षण का उद्देश्य यह ज्ञात करना था कि खिला-पिलाकर मोटे किये गये हिरण के श्रृंग के वजन में कितनी वृद्धि होती है और

क्या इस प्रकार धीरे-धीरे इतने बड़े श्रृंग नहीं उगाये जा सकते जितने वजन के चीन में अभी तक अज्ञात हैं। और धीरे-धीरे, समय बीतने के साथ मैं अपनी आँखों से ही देख सकता था कि खिला-पिलाकर मोटे किये गये हिरण के श्रृंगों में कैसा उम्दा खून भर रहा था, उनका आड़ू जैसा रंग कितना सुन्दर चमकता था और उन पर बाल कैसे रुपहले दमकते थे। अरे, मेरी योजनाएँ क्या कम थीं? पर मेरी प्रमुख योजना, मेरा सबसे मनोगत सपना यह था कि मूल्यवान मृग-श्रृंग जमा करके उन्हें बेच दिया जाये और उनकी बिक्री से मिले पैसे से ढेर सारा तार खरीदा जाये और ऐसे तार के जाल से सारी धुँधली पहाड़ी को उसके सारे हिरणों और उनके शत्रुओं: तेंदुओं, भेड़ियों, रैकूनों व बिज्जुओं समेत घेरकर मुख्य भूमि से अलग कर दिया जाये। मैं चार विभागों में बँटे अपने श्रृंग फार्म की कल्पना करता था: पहला मेरी हिरणशाला थी, जहाँ हिरण श्रृंगों की कटाई तक बन्द रहते और फिर दूसरे विभाग, उकाब घोंसला अन्तरीप के अर्द्ध उद्यान में छोड़ दिये जाते; तीसरा विभाग यह धुँधली पहाड़ी का उद्यान होता और अन्त में चौथा, यह धुँधली पहाड़ी से जुड़ा टैगा वन जो जंगली हिरणों का आरक्षित क्षेत्र होता। आगे मैं यह सपना देखता कि नये-नये जंगली पशुओं को पालने के अपने नये धन्धे में मैं लूवेन की सिफारिश से उसके जैसे चीनियों को अपने साथ रखूँगा और ऐसा करूँगा कि वे सभ्यता के प्रलोभनों से निर्लिप्त रहकर खुद यूरोपवासियों की तरह कप्तान बनें और अपनी खुदमुख्तारी कर सकें।

शायद मेरे और भी बहुत से सपने थे पर ये सब सपने जैसाकि मैंने उन्हें बाद में नाम दिया, कालपूर्व थे। हम सबको यह मानना पड़ेगा कि जीवन के ऐसे काल होते हैं जो हम पर निर्भर नहीं करते; लाख कोशिश करो, तुम चाहे कितने ही प्रतिभावान और बुद्धिमान क्यों न हो पर जब तक परिस्थितियाँ नहीं बन जातीं, जब तक समय नहीं आ जाता तब तक तुम्हारी सभी योजनाएँ सपना, कोरी कल्पना बनी रहकर अधर में लटकी रहेंगी। मैं बस एक चीज़ महसूस करता हूँ, जानता हूँ कि मेरी जिन्सेंग की जड़ कहीं पनप रही है और मैं अपने समय की प्रतीक्षा पूरी कर लूँगा।

13

ग्रीष्म ऋतु का गर्म और नम मौसम था। रात को सर्वत्र दीप टिमटिमाते उड़ते। सुबह को बड़ी-बड़ी मकड़ियाँ झाड़ियों और घास के डण्ठलों पर जाले बुनतीं। टैगा में चलते समय लाठी से मकड़ी के जालों को साफ़ करके रास्ता बनाना पड़ता था। अगर सुबह कुछ देर के लिए सूरज दर्शन देता तो इसके लिए हफ्ते भर का कोहरा माफ किया जा सकता था। और तब मकड़ी का हर जाला इतनी नमी के कारण नन्ही-नन्ही बूँदों से ढक जाता और मोतियों के काम के बेहद सुन्दर कपड़े की तरह जगमगाने लगता। ऐसे ही पल एक हिरणी उस पत्थर के पास आयी जहाँ मैं विश्राम कर रहा था, मन्द-मन्द हवा के कारण वह धोखा खा गयी और मैं पत्थर पर लेटे-लेटे हिरणों के जीवन की इस बड़ी घटना को देख सका। छौने ने जन्म लिया और उसके बदन पर भी माँ जैसी ही चित्तियाँ थीं। और धूप की चित्तियों के बीच वे

माँ और हिरनौटे को इस तरह छिपा रही थीं कि आदमी पास में गुजर जाये पर वे उसे नहीं दिखेंगें जन्म लेते ही छौना खड़ा नहीं हो सकता था। हिरणी लेट गयी और बड़ी देर तक थन को उसके मुँह के पास लाने की कोशिश करती रही ताकि उसे समझा सके कि क्या करना है। काफ़ी समय के बाद छौने की समझ में आया और वह थन चूसने लगा। जब माँ को लगा कि अब वह काफ़ी मज़बूत हो गया है, वह खड़ी हो गयी, छौना भी खड़ा हो गया और उसने खड़े-खड़े थन चूसने की कोशिश की पर वह अभी कमज़ोर था और डगमगाकर लेट गया। तब वह भी लेट गयी पर उसकी ओर अपना थन नहीं बढ़ाया: अब छौना खुद जानता था। उस समय मुझे बड़ी ज़ोर की खाँसी आ रही थी; लाख कोशिश करने पर भी, मुँह को हर तरह से बन्द करने के बावजूद भी उसे मेरी दबी खसी सुनायी दे गयी, हमारी आँखें चार हुईं और सीटी बजाये बिना ही वह ग ़ायब हो गयी। माँ का भय छौने में भी संचारित हो गया पर सहज ही वह दौड़ नहीं सकता था, और वह दुबककर ज़मीन से चिपक गया। दुश्मन की नज़र से छिपने के लिए, अगोचर, अदृश्य होने के लिए मानो उसे स्वयं यह विश्वास हो गया कि उसका शरीर अनमनीय है और जब मैंने उसे उठाया तो वह उसी तरह गठरी बना रहा और मैंने उसे किसी निर्जीव वस्तु की तरह वापस ज़मीन पर रख दिया। मुझे उसे वहाँ छोड़ते हुए दुख हो रहा था पर हमारे पास गाय नहीं थी, लूवेन दूध नहीं पीता था, वह कहता था: "अगर दूध पियोगे तो गाय को अपनी मम्मी मानना पड़ेगा।" पर अपने आज के अनुभव से मुझे हमारे

धन्धे के लिए एक मूल्यवान विचार मिल गया: भविष्य में जब हमारे यहाँ गायें हो जायेंगी हम ब्याने के वक्त लाइबा के साथ टैगा में घूमकर ऐसे पत्थर बनते छौनों को ढूँढ़ लाया करेंगे; ऐसे छौने बड़े होकर शायद बिल्कुल पालतू हिरण बन जायेंगे।

जितने में हिरणियाँ ब्या रही थीं उतने में हिरणों के श्रृंग निकल रहे थे और धीरे-धीरे हिरणियों और हिरणों की चिन्ताएँ एक जैसी हो गयीं: हिरणी अपने छौने का ख्याल रखती और हिरण अपने संवेदनशील और कोमल श्रृंगों का जो हल्की-सी चोट से खून की चटनी बन सकते थे। श्रृंगों के विकास की दृष्टि से 'सुरमई नयन' बहुत आगे था और एक सुबह इन श्रृंगों को कम से कम एक घण्टे तक निहारने के बाद लूवेन बोला:

"आज हमारा काटना माँगता!"

और हम इस बड़े और जोखिमभरे काम की तैयारियाँ करने लगे। लूवेन के अनुसार 'सुरमई नयन' के श्रृंगों का दाम एक हज़ार येन दवा से कम न था! पर सबसे बड़ी चिन्ता दवा की नहीं खुद हिरण की थी: अगर हमसे जरा-सी भी चूक हो गयी तो भयभीत हिरण, जो कोई बाधा नहीं जानता, न केवल अपने श्रृंगों की लाल चटनी बना डालगा बल्कि अपनी टाँगें भी तोड़ बैठेगा। ऐसा कोई था नहीं जो हमें सिखा सके। पुराने ज़माने में खुद लूवेन भी बर्बर और जोखिमभरी विधि से श्रृंग काटता था: चीनी बस हिरण को बांध कर गिरा देते थे।

बेहद जोखिमभरा काम करने के लिए हमने सभी हिरणों को

अहाते में छोड़ दिया, थाने में अकेला 'सुरमई नयन' ही बचा था। अब अगर थान से हिरण को छोड़ा जाये तो गलियारे में उसके लिए एक ही रास्ता बचा था - मशीन की ओर जाने वाला; गलियारे का दूसरा रास्ता लटके चलायमान कपाट से बन्द था। इस कपाट में एक छेद था जिसमें से कपाट के पीछे खड़ा लूवेन देख रहा था कि कैसे मैंने थान का दरवाज़ा खोला और गलियारे के दूसरे सिरे पर जाकर उसकी तरह दूसरे कपाट के पीछे छिप गया। लूवेन की तरह मैं भी छेद में से देख रहा था, मेरा हाथ लीवर के हत्थे पर टिका था: जैसे ही हिरण मशीन के बक्स में घुसेगा, मैं लीवर दबा दूँगा और हिरण बगल से मुलायम चटाई से मढ़े तख्तों के सहारे हवा में टाँगें झुलाता अधर में लटक जायेगा। पर अभी इसमें देर थी। थान से निकलकर 'सुरमई नयन' झुटपुटे से भरे गलियारे में जड़वत खड़ा था: वह स्थान जहाँ से वह अहाते में बाहर जाया करता था अब कपाट से बन्द था और दूसरी, अज्ञात दिशा में जाने की बिल्कुल भी इच्छा न हो रही थी। तब लूवेन हल्के से ठेलते हुए कपाट को आगे बढ़ाने लगा। हिरण दुविधा में पड़ा था - खतरनाक दिशा में जाये या कपाट पर टूट पड़े, उसे तोड़ डाले और शायद अपना भी सिर फोड़ बैठे। कपाट पास आ रहा था और उसके पीछे से सुपरिचित स्नेहपूर्ण स्वर पुचकार रहा था:

"मीश्का, मीश्का!"

लूवेन सभी हिरणों को मीश्का कहकर ही पुकारता था।

'सुरमई नयन' शान्त हो गया और उसने सावधानी के साथ खतरनाक दिशा में जाने का फैसला किया। वह कुछ आगे चलता और ठिठककर खड़ा हो जाता, धीरे-धीरे वह उस स्थान की ओर बढ़ रहा था जहाँ अचानक उसके पाँवों तले फ़र्श खिसक जायेगा। यह सोचकर डर लग रहा था कि वह मशीन के ऐन पास पहुँचकर कहीं हमारी चालाकी को भाँप न जाये। उसके पास एक चारा बचा था - वह फ़र्श पर लेट सकता था और तब हम कुछ न कर पाते क्योंकि जबर्दस्ती नहीं की जा सकती थी: उसे बस उछलने की देर थी और किये-कराये पर पानी फिर जाता। सन्नाटा छाया हुआ था, बस घिर्रियों की हल्की-सी चूँ-चूँ सुनायी दे रही थी। ऐसा क्षण आ गया जब हिरण के पास लेटने या जोखिम उठाने के अलावा कोई चारा न बना। और उसके अलग खुर चलायमान फ़र्श पर पड़े, पीछे से कपाट ने पास आकर उसे बेखटके धकेल दिया। मैंने लीवर दबा दिया, कोई गड़गड़ाहट-सी हुई और पलक झपकते ही लूवेन कपाट हटाकर अतिरिक्त विश्वसनीयता के लिए दोनों ओर से तख्तों से भिंचे हिरण की पीठ पर सवार हो गया। तब मैंने ओट से निकलकर मशीन का ढक्कन खोला और असहाय हिरण के सिर को मशीन की दीवारों की आड़ी टेक से बाँध दिया। श्रृंग काटने की क्रिया बेहद पीड़ादायी होती है, हाथ लगाते ही खून का फौवारा फूट पड़ता है पर पीड़ा क्षणिक ही होती है। युवा हिरण बहुत चिल्लाता है डर के मारे उसकी पुतली चढ़ जाती है, पर बूढ़ा गर्वीला हिरण अक्सर चूँ तक नहीं करता। और 'सुरमई नयन'

ऐसा था: उसकी भयंकर स्थिति में, जब टाँगें हवा में झूल रही थीं और उनको टिकाने के लिए कुछ आधार न था, जब जंगली हिरण के लिए कयामत का दिन आ गया था, ऊपर से बगलों को किसी ने भींच रखा था, पीठ पर एक आदमी सवार था और दूसरा उसके जीवन की खुशी - श्रृंगों को काट रहा था, यह माँ के सामने उसके बच्चे की हत्या के समान ही था - ऐसी हालत में 'सुरमई नयन' ने चिल्लाना तो दूर, आँख की पलक तक न हिलाई। मैं मृगराज के इस उदाहरण को अपने लिए एक आदर्श की तरह सँजोकर रखता हूँ: मैंने खुद देखा है और भलीभाँति जानता हूँ कि अगर स्वयं अपने को अपमानित न करो तो कोई भी परिस्थिति अपमानजनक नहीं होती।

श्रृंग काटकर मैंने हिरण का सिर खोला। लूवेन उसके ऊपर से उतर गया। मैंने बगल के तख्ते हटानेवाला लीवर दबाया और हिरण नीचे बने गड्ढे में गिर गया और वहाँ पाँवों के लिए आधार पाकर गोली की तरह छूटकर अहाते में पहुँच गया। दस मिनट भी नहीं बीतने पाये थे कि जब हमने आम नाँद में सोयाबीन के दाने डाले और सींगकटा 'सुरमई नयन' दर्द को भूलकर अन्य सभी हिरणों के साथ मजे में दाने चबा रहा था। कठिन काम के बाद मैं खुशी से नाच उठा और लूवेन से लिपट गया और उस बूढ़े की आँखों में खुशी के आँसू आ गये।

और उसी समय, जब हम अपनी विजय मना रहे थे, एक मामूली धारीदार गिलहरी का रूप धारण करके भयंकर मुसीबत दबे पाँव हमारे पास आ रही थी। यहाँ इन गिलहरियों की इतनी भरमार

थी कि मैं अब उस गिलहरी पर कोई ध्यान न देता था जो रोज आकर नाँद के नीचे पड़े दानों को खाती थी। अब हुआ यह कि एक दाना 'हुआ-लू' के खुर के पास पड़ा था, गिलहरी उसे उठाने के लिए दौड़ी पर उसी क्षण 'हुआ-लू' ने टाँग बदली और उसके खुर से गिलहरी की दुम भिंच गयी। सहज ही गिलहरी ने उत्तर में अपने दाँत 'हुआ-लू' की टाँग में गड़ा दिये, हिरणी ने सिहरकर उसकी ओर देखा और भगवान जाने उसे वहाँ क्या हौवा दिखायी दिया! ऐसा हाल तब होता है जब कोई खचाखच भरे थियेटर में चिल्ला दे: "आग लग गयी!" और लोग घातक खतरे को महसूस करके अपनी जान बचाने की चिन्ता के सिवा सब कुछ भूलकर ठीक पशुओं की तरह दौड़ पड़ते हैं। इसी तरह अपनी टाँग पर बैठे धारीदार पुच्छल हौवे को देखकर भयभीत 'हुआ-लू' का संत्रास पलक झपकते ही सब हिरणों में फैल गया, स्वाभाविक ही था कि एक-एक टन की शक्ति से भरे ढाई-ढाई मन के ये सभी हिरण अपनी टाँगों का पूरा जोर लगाकर अपनी टनों की शक्ति से बाड़ को चकनाचूर करके आज़ाद हो गये। गिरती बाड़ का शोर, खरोंचें, बाड़ से टकराकर हुआ दर्द - यह सब 'हुआ-लू' के लिए शायद उसकी टाँग पर बैठे धारीदार हौवे के विकराल स्वरुप की ही अभिव्यक्तियाँ थीं। वह अपनी दुम के सफ़ेद रुमाल को फुलाये दूसरों को रास्ता दिखाती ताबड़तोड़ दौड़ी जा रही थी और सब उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे, आगेवाला हर हिरण अपने से पीछेवाले को अपना रुमाल दिखा रहा था और उन सबके पीछे-पीछे उन्हें उकसाता हुआ अदृश्य

धारीदार गिलहरी हौवा दौड़ रहा था।

मैं लुट गया, मैं ठगा रह गया! मैं हिरणों को ढूँढ़ने के लिए, दौड़ा-दौड़ा पहाड़ों में गया मानो भयभीत जंगली जानवरों को भी ढूँढ़ा जा सकता हो। मैंने कहाँ-कहाँ की धूल न फाँकी, पर वे कहीं नहीं मिले, और फिर शाम के झुटपुटे में वे सब अचानक मुझे अपने ऊपरवाली चट्टान पर नज़र आये। दूसरी ओर सिर घुमाकर जब मैंने देखा तो वहाँ भी हिरण नज़र आये, चारों ओर यही हाल था, हमारे खड्ड की चट्टानों पर भी हिरण ही हिरण थे। मैं लगभग पागल ही हो उठा और दयालु लूवने रात भर मुझसे किसी भी तरह सान्त्वना न दे पाया।

14

हर प्रकार की असफलताओं की खिन्नता और खराब मूड के इलाज की मैंने अचूक दवा ढूँढ़ निकाली थी - ब्रह्ममुहूर्त की वेला में फ़ान्ज़ा से बाहर निकलता, किसी चीज़ पर पीठ टिकाकर खड़ा हो जाता और अपने ध्यान को इस विचार पर केन्द्रित करने लगता कि मेरी जीवन की जड़ पनप रही है, कि इसके लिए समय की ज़रूरत है, इसलिए किसी मुसीबत से हार नहीं मान लेनी चाहिए बल्कि मुसीबत की अटल होनी की तरह अगवानी करनी चाहिए और सोचना चाहिए कि देर-सबेर ज़रूर आयेगा मेरा समय, मेरी सफलताओं का समय। मुझे लगता था कि इस दैनिक अभ्यास से मैंने अपने मनोबल को दृढ़ बना लिया है और हमेशा के लिए अपने को मुसीबत के सामने घुटने टेकने

की शर्मनाक कमज़ोरी से सुरक्षित कर लिया है। और अब जीवन की पहली गम्भीर ठोकर खाते ही मेरी सुविचारित परन्तु कुपरीक्षित युक्ति मुझे दगा दे गयी और मैं जिन्सेंग के बारे में भूल गया।

मैं अपनी हिरणशाला के खण्डहरों पर लाइबा के साथ बैठा रुक-रुककर अपना बिगुल बजा रहा था। मेरे दिमाग में यह विचार आया कि अगर मैं तनिक भी अंधविश्वासी, सीधी-सादी पर असहनीय बातों को किन्हीं अबोधगम्य अलौकिक कारणों का परिणाम माननेवोला आदमी होता तो मैं 'हुआ-लू' के बारे में यह सोचे बिना कैसे रह सकता था कि वह अपनी सुन्दरता से मुझे अपने जाल में फँसानेवाली चुड़ैल है: वह देखते-देखते अतिसुन्दर औरत में बदल गयी और जब मुझे उससे प्रेम हो गया वह अचानक गायब हो गयी। और जब मैं अपने पौरुष की सृजनात्मक शक्ति से इस माया के व्यूह को तोड़ने लगा तो अचानक 'हुआ-लू' ने खुद आकर उसे चकनाचूर कर दिया। और अन्त में गिलहरी के रूप में कोई धारीदार हौवा प्रकट होता है। इसी प्रकार पुरातन काल से मानव अपने को अंधविश्वासों के रक्षादायी कवच से ढँकता आया है: चुड़ैलों और भूत-प्रेतों का स्थान चीज़ें, परिवेश आदि ले लेते हैं और बस बच्चे ही जीवन्त सजीव रहते हैं..

जीवन की गिरती लहर के दौरान मेरे दुखित मस्तिष्क में ऐसे ही ढेरों विचार उथल-पुथल कर रहे थे। पर नयी लहर अब दूर न थी। लाइबा बड़ी देर से अजीब-से ढंग से कभी पीछे की ओर

देखती, फिर मुझे ताकने लगती, मानो वहाँ पीछे कुछ आम बात हो रही हो जिसकी वजह से कोई चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं, पर फिर भी पीछे सिर्फ कुछ था ही नहीं बल्कि कुछ हो रहा था। न जाने क्यों मैं कुतिया के मूक इशारों पर कोई ध्यान न दे रहा था और तब तक अपनी विषादपूर्ण सोच में उलझा रहा जब तक मुझे अपने ऐन पीछे स्पष्ट सरसराहट न सुनायी दी। बस तब मैंने मुड़कर देखा और...पीछे मेरे बिल्कुल पास 'हुआ-लू' मिशूत्का के साथ खड़ी थी और भगदड़ के समय ज़मीन पर बिखरे सोयाबीन के दाने चुन रही थी। मेरे हर्ष का न आर था न पार! यही नहीं। एक गिलहरी नहीं, बल्कि पाँचेक छोटे-बड़े धारीदार हौवे भी सोयाबीन के दाने चुगने में मग्न थे। कितनी ही बार मेरे जीवन में ऐसा हो चुका था - अपनी मुसीबतों को समझने और आसान बनाने के लिए पांडित्यपूर्ण व्याख्याओं, रहस्यमय और दूरस्थ शक्तियों का दामन पकड़ता ही था कि अचानक स्वयं जीवन साक्षात प्रकट हो जाता और मुझे, अपने चहेते को ऐसा उपहार देता कि मैं खुशी से पागल हो जाता, मस्ती में झूम-झूमकर नाच उठता। मैं कभी भी उस घड़ी को नहीं भुला सकता जब कोहरे को चीरकर सूर्य प्रकट हुआ और मकड़ी के सराबोर जालों में जड़े हीरे-मोती जगमगा उठे, कितने सारे फूल थे यहाँ और वे भी कैसे-कैसे! वहाँ मोती के हार पहने एजेलिया का फूल है, वहाँ लिली का फूल हीराजड़ित टोपी पहने है, उधर निर्माता ने रुपहले तार से एडलवाइस के सफ़ेद फूल को बाँधकर उसे भी अपने प्रातःकालीन आनन्द के निर्माण में खींच लिया।

जवाहरातों की ऐसी विपुलता केवल अरबी कहानियों में मिल सकती पर उनकी अद्भुत अरबी कल्पना भी मुझ जैसे अमीर और सुखी खलीफा को नहीं रच पाती।

कितनी असीम अक्षतता, सृजन की कितनी अजò शक्ति निहित है मानव में और कितने ही कोटि-कोटि मानव आते हैं और अपने जिन्सेंग को समझे बिना, अपने अन्तर्मन की गहराइयों में शक्ति, साहस, हर्ष और सुख के स्रोत को खोजे बिना चले जाते हैं! देखो तो, मेरे पास कितने हिरण थे, और कैसे-कैसे! यही याद करो, छुरी की धार के नीचे 'सुरमई नयन' का आचरण कैसा था! पर भला मुझे उनसे कभी इतनी खुशी हुई थी जितनी कि अब, जब अकेली 'हुआ-लू' के आने पर मैं खुशी से पागल हो उठा? यह सोचा जा सकता है कि मैं उस समय समझता था कि 'हुआ-लू' की सहायता से मैं ढेरों हिरणों को पकड़ सकता हूँ और इसीलिए इतना खुश हुआ। हरगिज नहीं! मैं खुश इसलिए हुआ कि हिरणों से वियोग ने स्वयं मुझे दिखाया कि मैंने इस काम में कितनी शक्ति लगाई, मुझे इसलिए खुशी हुई कि मैं अब फिर से अपने अद्भुत, सुन्दर निर्माण को शुरु कर सकूँगा। और अब मैंने लूवेन के साथ जल्दी-जल्दी खुशी से बाड़ ठीक की और उसे ऊँचा करके ऐसा पुख्ता बना दिया कि हिरण उसे न फाँद सकें, अपनी संयुक्त शक्ति तक से उसे न गिरा सकें। अब मैं धीरे-धीरे समझता जा रहा था कि मेरे काम के लिए बिगुल सुनकर जंगली टैगा से 'हुआ-लू' के आने का सभी भागे हिरणों पर स्वामित्व से कहीं अधिक महत्व है। अब मैं बिना किसी जोखिम के रोज

प्रयोग करता था: सबेरे 'हुआ-लू' को खुले चरागाह में छोड़ देता और शाम को उसे बिगुल बजाकर वहाँ से बुला लेता। यही नहीं, हर बार जब मैं उसे बुलाता तो प्रेम से बनाकर कोई चीज़ उसे और मिशूत्का को खाने को देता, इस प्रकार मैं उसे दिन में किसी भी समय वापस बुलाने में सफल हो गया, बस बिगुल बजाने की देर थी और वह टीलों पर सरपट दौड़ती हिरणशाला में आ जाती।

धीरे-धीरे हिरणों की संगम ऋतु पास आ रही थी और एक दिन ऐसे ही अचानक मेरी समझ में आ गया कि अपने हिरणों और हो सके तो नये हिरणों को पकड़ने के लिए मुझे क्या करना चाहिए। एक बार उकाब घोंसले के सामने वाले टीले पर हिरणियों का झुंड आया और न जाने क्यों उनके साथ बड़े-बड़े अस्थिकृत होते सींगों वाला 'ढिल्लू' भी था। पतझड़ अभी शुरू ही हुई थी, अभी तो काकड़ भी नहीं चिंघाड़े थे, पर बेशक जानवरों के बीच भी लोगों की तरह के मनचले होते हैं। यही प्रतीत होता था कि प्रयोग के तौर पर खिला-खिलाकर मोटे किये गये हिरण पर वक़्त से पहले ही मस्ती छा गयी थी और शायद वह अभी बिल्कुल भी न तैयार हिरणियों के साथ छेड़छाड़ के विफल प्रयास भी करता हो। मैं ओट में छिपकर बैठा 'ढिल्लू' को देख रहा था, जब वह टीले के पीछे चला मैंने चुपके से हिरणशाला का फाटक खोल दिया, फाटक से रस्सी बाँध दी और 'हुआ-लू' को घूमने के लिए छोड़ दिया। वह खुशी-खुशी झुण्ड की ओर दौड़ पड़ी पर तभी 'ढिल्लू' की नज़र उस पर पड़ी

और वह दौड़ा-दौड़ा उसके पास जाकर उससे मिला। शायद उनके बीच हिरणशाला में हिरणों के लिए असाधारण जीवन जी चुकने के फलस्वरूप कोई दोस्तानापन आ गया हो। पर उसने बेशक अपने को एक निश्चित सीमा तक सूँघने दिया: जैसे ही 'ढिल्लू' ने सीमा लाँघी वह वहाँ से भागकर हिरणियों के झुण्ड में छिप गयी। कोई घण्टा भर बीत चुका था, वह 'ढिल्लू' के बारे में भूल गयी और झुण्ड से बाहर निकली। वह कुछ दूर ही जा पायी थी कि वह झट से आकर भद्दी छेड़खानी करने लगा। उसके पास फिर से झुण्ड में जा छिपने के अलावा कोई और चारा न बचा था, पर मैंने यह क्षण अपने लिए उचित पाया और पत्थर के पीछे हवा के रुख से बचकर लेटे हुए मैंने एक हाथ से कसकर रस्सी पकड़ी और बिगुल बजा दिया। तब वह फौरन सरपट दौड़ पड़ी और मेरा अनुमान गलत नहीं निकला: वह भी उसके पीछे-पीछे तेजी से दौड़ पड़ा। जब वह दौड़ता हुआ फाटक में घुस रहा था तो उसके मन में तनिक भी संशय न था, जब उसके पीछे फाटक बन्द हो गया तब भी उसने मुड़कर देखा तक न, यही नहीं, मुझे देखकर भी उसे कोई संकोच न हुआ।

मैं कितनी बेसब्री से चीतलों की संगम ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। धीरे-धीरे अंगूर की पत्तियों पर लाली छाने लगी, छोटी पत्तियों वाले मैपिलों की लपटें दहकने लगीं और एक दिन, हल्के-से तूफ़ान के बाद, निस्तब्धता में ताराजड़ित रात को पाले का जन्म हुआ और पिछले साल ही की तरह सितम्बर की उसी रात को, उसी ओर, उसी पहाड़ी पर पहला काकड़

चिंघाड़ा।

दैनिक, चाक्षुष परिवर्तनों के साथ और दो सप्ताह बीत गये। अंगूर पक गया था। पीली चरागाहों में एजेलिया के मुरझाये फूल ज़मीन पर पड़ी लाल तश्तरियों की तरह दिखने लगे, और सारी चरागाह मानो द्वन्द्वों में बहे हिरणों के खून से रंग गयी। तब फिर रात की रहस्यपूर्ण नीरवता में, वहाँ, जहाँ पर्वत के काले कटक ने सप्तर्षि नक्षत्र की पूँछ को काट रखा था, पहला हिरण चिंघाड़ा और प्रतिध्वनि की तरह दूसरे ने उसका उत्तर दिया, और इस प्रतिध्वनि का एक दूरस्थ प्रतिध्वनि ने। अब, जब संगम ऋतु की चिंघाड़ें शुरु हो गयीं, मेरे लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि 'हुआ-लू' का वह दिन न चूक जाये जब हरेक हिरणी अपने निशानों पर ऐसी गन्ध छोड़ती जाती है जिससे सभी श्रृंगी मतवाले हो जाते हैं: दूर से हवा द्वारा लायी गयी या नीचे ज़मीन पर फैली इस गन्ध को पाकर वे खाना-पीना छोड़कर चिंघाड़ते हुए उसे ढूँढ़ने चल पड़ते हैं। इस गन्ध को पाकर श्रृंगी हिरणी के लिए मर-मिटने को तैयार हो जाते हैं पर स्वयं हिरणी इस दिन केवल अठखेलियाँ करना चाहती हैं और कुछ नहीं। चंचल हिरणी खुद नौसिखिया या फूहड़ श्रृंगी के साथ खिलवाड़ करने लगती हैं और जब वह आवेशित होकर उसकी ओर दौड़ता है तो वह सिर पर पाँव रखकर दौड़ पड़ती है मानो उसे यह विश्वास दिलाना चाहती हो कि यह संगम दौड़ ही हिरणी की सबसे अच्छी, एकमात्र मूल्यवान चीज़ है। इसके फलस्वरूप कि 'ढिल्लू' फिर से पकड़ा जा चुका था और मेरे यहाँ रह रहा था, मैं

सही-सही उस दिन का पता लगा सकता था जब 'हुआ-लू' ठीक इसी हालत में होगी, शरारत करने और दौड़ने की, पर गन्दे, अपने ही वीर्य में सने श्रृंगी साँडों के वश में हरगिज न आयेगी।

अन्ततः ऐसी शाम आ गयी, मुझे इसके पहले लक्षण दिखायी दिये। मैंने 'हुआ-लू' के गले में रस्सी बाँधी और धीरे-धीरे सुपरिचित पगडण्डी से धुँधली पहाड़ी का चक्कर लगाने लगा। चाँदनी रात थी, सर्वत्र चिंघाड़ें सुनायी दे रही थीं और कभी-कभी सींगों के टकराने की तड़तड़ सुनायी देती। न जाने क्यों चाँदनी रात में हिरणों को डर कम ही लगता है, और अक्सर मुझे अपने बिल्कुल पास कभी सींग दिखायी देते, तो कभी सफ़ेद दुम। और कभी-कभी श्रृंगी इतने पास से चिंघाड़ता कि यह वैसी चिंघाड़ न लगती जैसी दूर से सुनायी देती है, बल्कि विविध ध्वनियों का सरगम होती, पर वे दूरस्थतम चिंघाड़ों की तरह केवल यातना का बखान करतीं - दर्द भरी खरखर, कराह, चीत्कार। अपनी 'हुआ-लू' के साथ मैं अपने मन में नर हिरणों की, इस, पास से बेहद भौंडी कामुक चिंघाड़ से घिन-सी महसूस कर रहा था पर इन कर्कश ध्वनियों में एक भोला-सा सुर भी था जो लगभग किसी रूठे बच्चों के क्रन्दन और सहानुभूति के विनम्र विनीत अनुरोध जैसा लगता था। एक मानव की दृष्टि से मुझे लगता था कि सहानुभूति और संवेदना के केवल इस अनुरोध के कारण ही चिंघाड़ पर ध्यान दे रही थी और इसी के कारण वह अब किसी भी श्रृंगी के साथ खेलने और दौड़ लगाने को तैयार थी। वह अक्सर रुक जाती, कान लगाकर सुनती, उसके शरीर में झुरझुरी

दौड़ जाती और बेशक वह सर्वत्र अपनी निशानी छोड़ती जाती। मन्द-मन्द हवा धुँधली पहाड़ी को सहला रही थी और उस क्षण जब श्रृंगी को 'हुआ-लू' की गंध मिलती वह चिंघाड़ना बन्द कर देता और हवा सूँघता-सूँघता निशानी तक पहुँचता पर मनोवांछित गन्ध के साथ उसे सबसे खूंख्वार पशु की भी बू आती ओर वह असमंजस में पड़कर रुक जाता, चिंघाड़ना तक भूल जाता। हाँ, उनमें ऐसा घ्राण है जिसको आदमी अब बिल्कुल भूल चुका है। मैं उस करुण सुर से यह अनुमान लगाता हूँ कि उनमें वैसा ही घ्राण है जैसा हमारी अब फूलों के मामले में बची है, शुरु में सौन्दर्य की कोई छवि बनती है, चाहे क्षण भर के लिए ही कामवासना से मुक्त, और जब इसके बाद वासना फूट पड़ती है और सौन्दर्य से कुछ मिलता नहीं तो हम संगीत का सहारा लेते हैं और वे चिंघाड़ का..

धुँधली पहाड़ी का आलिंगन करती हवा में 'हुआ-लू' की गन्ध पाकर शायद बहुत से श्रृंगी चिंघाड़ना बन्द करके हवा को सूँघते-सूँघते चले होंगे और आदमी की भयंकर बू मिलने पर सहमकर रुक गये होंगे, बड़ी देर तक एक ही स्थान पर खड़े रहने के बाद सतर्कता के साथ गन्ध और निशानियों के सहारे-सहारे आगे ही बढ़ चले होंगे।

15

भोर की वेला में पाला पड़ गया। मैं 'हुआ-लू' को हिरणशाला के अन्दर ले गया, फाटक में फंदा बिछा दिया, और पत्थर की

ओट में हवा से बचे स्थान पर लेटकर धुँधली पहाड़ी तक एक कतार में फैले टीलों पर होने वाली घटनाओं की प्रतीक्षा करने लगा। हल्की-सी खुनकी भरी हवा अत्यन्त पारदर्शी थी और बिल्कुल आसमानी समुद्र ने धुँधली पहाड़ी को घेर रखा था। पाले के सफ़ेद लेस का परिधान पहने पहाड़ी नरकट नील पृष्ठभूमि में अधिकाधिक मनोहारी लग रहा था। धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ने के साथ रमणीयता इतनी बढ़ती जा रही थी कि मानो उसी के कारण मेरे मन की गहराइयों में एक तीव्र पीड़ा शुरू होने लगी थी, वह भी ऐसी कि बस थोड़ी-सी और, और मैं भी हिरण की तरह सिर उठाकर चिंघाड़ उठूँगा। यह मौत की सी पीड़ा कहाँ से आयी अगर चारों ओर इतनी रमणीयता ही रमणीयता है? या क्या पता मैं भी हिरण की तरह सुन्दर छटा को देखकर सुखाभास की अपेक्षा करता हूँ पर उसे न पाकर यातना झेल रहा हूँ और हिरण की तरह ही मैं भी समझो चिंघाड़ने को तैयार ही हूँ?

जब दिन अच्छी तरह निकल आया और सब चमचमाने लगा, धुँधली पहाड़ी की तिरछी पगडण्डियों पर जहाँ-तहाँ श्रृंगी दिखायी पड़े, शुरू में वे दूरी के कारण मक्खियों की तरह लगे और फिर बड़े होने लगे, कुछ देर के लिए वे कन्दरों से जुड़े खड्डों में ओझल हो जाते और फिर पहले टीले के पीछे से दिखायी पड़ते, फिर दूसरे के पीछे से और जब श्रृंगी अन्तिम टीले पर चढ़ने लगते तो उसके पीछे से शुरू में उनके सींग दिखायी पड़ते - ऐसा प्रतीत होता मानो ज़मीन में से सींग उग रहे हों। उकाब घोंसला अन्तरीप के सामने वाले टीले पर एकाकी पाइन वृक्ष

खड़ा था - तूफ़ानों से अनवरत संघर्ष में तपा। वह पूरा गूमड़ों से ढका था, तूफ़ान के प्रहार की निशानी - हरेक गूमड़ा - लम्बी-लम्बी गहरी हरी सुइयों जैसी पत्तियों वाली अजेय टहनी को थामे था और खुद तना भी टेढ़ा-मेढ़ा था, पर फिर भी यह ऊँचा विजयी तना था! मुरझाये एजेलिया पुष्पों के रक्ताभ धब्बोंवाली पीली चरागाह में उसकी छाया हरी घनी घास और बलूत की झाड़ियोंवाली खाई तक फैली थी। यह खाई एक छोटे-से कन्दर की तरह थी। वह गहरी होती-होती सागर तट तक चली जाती थी, उसकी पेंदी में पत्थरों के बीच आँख-मिचौनी खेलती नन्ही-सी धारा दौड़ती थी। हाँ, तो इसी खाई में हिरनौटों के साथ हिरणियों का छोटा-सा झुण्ड चर रहा था, यहाँ दो श्रृंगी भी थे, रंग उनका बेहद गहरा था और वे बड़े शान्त थे, हिरणियों के साथ खिलवाड़ नहीं कर रहे थे, न कुछ खा रहे थे, न ही चिंघाड़ रहे थे। वे बस निश्चल खड़े थे किन्हीं तपस्वियों की तरह। टीले के पीछे से एक असाधारण भीमकाय, अत्यन्त वैभवशाली हिरण निकला पर बिना सींगोंवाला। मृगराज के राजसी वैभवशाला पर साथ ही सींगों के स्थान पर सिर पर गूमड़ों वाला यह हिरण बड़ा अजीब लग रहा था। बेशक, 'सुरमई नयन' भी मेरे चिह्नों पर चलता पहाड़ों से आ गया था और अब वह सीधा हमारे खुले फाटक को ताक रहा था। मैंने 'ढिल्लू' की तरह उसे भी फँसाने का निश्चय किया। चुपके से मैंने दरवाज़ा खोल दिया, फाटक से बँधी रस्सी तैयार कर दी, विदा करते हुए 'हुआ-लू' को सहलाया और छोड़ दिया। वह खुशी-खुशी बाहर निकली और धीरे-धीरे

शान के साथ खाई में चरते झुण्ड की ओर जाने लगी। पर 'सुरमई नयन' समझ गया कि झुण्ड से उसे इतनी जल्दी नहीं निकलवाया जा सकेगा और वह उसका रास्ता काटने के लिए चौकड़ी भरता सीधा दौड़ा और उसे रोकने में सफल हो गया। अभी हाल ही में तो मैंने इस हिरण को उसके सुन्दर रुप में देखा था और अब वह सिर से पाँव तक कीचड़ में नहाया मैला-कुचैला खड़ा था, पेट की मांसपेशियाँ फड़क-फड़ककर सिकुड़ रही थीं, निरन्तर चिंघाड़ने के कारण गर्दन फूली हुई थी, आँखों में खून उतर आया था। इसी वीभत्स राक्षस से बचने के लिए 'हुआ-लू' पेड़ की ओर दौड़ी और वह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा और दोनों टीले की आड़ में ओझल हो गये। तब मैंने अपना बिगुल उठाया और कुछ देर तक बजाया। प्रतीत होता था कि 'हुआ-लू' ने उसे सुन लिया और वह मुड़कर उस खाई के ऐन सिरे पर दिखायी दी जहाँ हिरणियों का झुण्ड चर रहा था और दो काले तपस्वी खड़े थे। अगर झाड़ियों से भरी खाई उसके रास्ते में न आ जाती तो वह बेशक, मेरे पास दौड़ी आती अपने पीछे-पीछे साँड को भी ज़रूर ले आती, पर झाड़ियों में वह कुछ अटक गयी और यही 'सुरमई नयन' ने उसे धर दबोचा।

...क्या उस समय उसके दिमाग में हम लोगों की तरह, अपनी हिरणसहज, विशेष घ्राण शक्ति द्वारा निरुपित निरपेक्ष सौन्दर्य की कोई छवि थी, नहीं, मेरे विचार में अब उसके दिमाग में इस छवि का कोई नामोनिशान न रहा था, उसके सामने सौन्दर्य नहीं, बल्कि मजेदार आनन्दभरा जीवन था। वह साँड की तरह हवा में

सीखपा हो गया। और अचानक वहाँ हवा में कुछ मिला ही नहीं। जी हाँ, ऐसा भी होता है: लगता है कि बस अभी बात बनने वाली है और फिर सब पर पानी फिर जाता है! ‘हुआ-लू’ ने बचाव की एकमात्र युक्ति अपनायी: वह ज़मीन पर लेट गयी। तब सब कुछ पर पानी फिर गया, सौन्दर्य पर भी और मस्ती के जीवन पर भी। और यह देखकर कि वास्तव में कुछ नहीं रहा, ‘सुरमई नयन’ ने अपना सिर पीछे को लुढ़काया और उसके मुँह से पतली-सी सीटी निकली और फिर यह पतली सीटी उल्टे बजते सायरन की तरह धीरे-धीरे भारी चिंघाड़ में बदलती चली गयी। सीटी और चिंघाड़ के बीच के अन्तराल में सभी साँडों की तरह एक सुर न जाने करुणा का था या दिल को लगी ठेस का था पर यही सुर हिरणों के संगीत की उत्पत्ति को समझने की कुंजी था। और मैं अपने बारे में भी सोच रहा था : हाँ-हाँ, मेरी प्राणहर पीड़ा का भी, बेशक यही कारण था कि हिरण की तरह मैं भी एक समय सौन्दर्य और मस्ती के जीवन में भेद न कर सका, पर मस्ती का जीवन अचानक लुप्त हो गया और इसी कारण मुझे सौन्दर्य की अनुभूति प्राणहर पीड़ा के संग होती है।

अगर मैं संगम ऋतु में हिरणों के व्यवहार का एक वैज्ञानिक के रूप में सही-सही अनुसंधान शुरू करता तो मेरा सबसे पहले कदम यही होता कि मैं हिरणों को अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर समझना छोड़ देता। पर मैं तो स्वयं इस निर्जन में बिल्कुल किसी पशु की तरह यातना झेल रहा था और इससे मुझे उनके प्रति सगेपन की अनुभूति हो रही थी, मुझे उन पर

तरस आ रहा था, सगेपन की बदौलत मैं उन्हें महसूस कर रहा था: वह लेटी है, बला टलने की ताक में और वह उसके सिर पर खड़ा है अपमान की यातना सहता, घुल-घुलकर दुबला हुआ, कीचड़ में सना, भव्य सींगों के स्थान पर हड़ीले गुमड़ोंवाला टैगा का निष्कासित स्वामी। यह इतना स्पष्ट है, इतना सीधा-सरल है कि अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन है - संघर्ष! अब सभी प्रश्न घूम-फिरकर यहीं अटक जाते: या तो मैं अकेला, या तू, या मैं मार दूँगा, या खुद मर जाऊँगा..

खाई से आकर हिरणियों के झुण्ड ने अपनी बहन 'हुआ-लू' को घेर लिया मानो वे उसे समझती हों, उससे सहानुभूति रखती हों। उधर हरम का मालिक 'सुरमई नयन' भावी मज़ेदार जिन्दगी की प्रतीक्षा में खड़ा था, वह ढूँढ़ रहा था कि बस कोई ऐसा मिल जाये जिसके साथ फटाफट लोहा लिया जा सके। दोनों तपस्वी, एक छैसिंगा और दूसरा चौसिंगा पाँव गड़ाये खड़े थे, उन्हें एक भी कदम आगे बढ़ने की हिम्मत न हो रही थी। या क्या पता वे समझते हों कि सिर्फ सींगों के बल यहाँ कुछ नहीं किया जा सकता? या वे अपने राजा को सींगकटा देखकर अभी तक हक्के-बक्के हों? या उन्हांने देख लिया कि 'कलपीठू', 'खड़सींगू', 'छैला' तथा बहुत-से अन्य मंजे हुए योद्धा जल्दी-जल्दी यहाँ पहुँच रहे हैं? न जाने क्यों 'कलपीठू' टीले पर पेड़ के पास खड़ा हो गया, उसे और निकट आने की इच्छा न हुई। हमेशा की तरह उसके मन में कोई मैल था, मानो उसने कोई नापाक मंसूबा बना रखा था। टीले पर 'कलपीठू' और उस खाई

के बीच, जहाँ रौद्र मुद्रा में 'सुरमई नयन' तैयार खड़ा था, ढलान पर आठ विभिन्न श्रृंगी खड़े थे जिन्हें मैं बिल्कुल नहीं जानता था। क्या पता 'कलपीठू' की योजना यह हो कि आठों के आठों श्रृंगियों को बारी-बारी से 'सुरमई नयन' के साथ लड़ने दिया जाये और अगर 'सुरमई नयन' ने एक-एक करके सभी को हरा दिया तो खुद थके-हारे पर टूट पड़ेगा या बस, एक ही बार काफ़ी हो काम तमाम करने के लिए?

'सुरमई नयन' ने शुरू में नाक सिकोड़कर ढलान पर सबसे आगे वाले हिरण की ओर उपेक्षापूर्ण फूत्कार छोड़ी। अक्सर यही काफ़ी होता है और प्रतिद्वन्द्वी पीठ दिखा देता है। पर श्रृंगी ने सींगकटे की चेतावनी पर कोई ध्यान न दिया। 'सुरमई नयन' ने जीभ फटकारी। पर वह वैसे का वैसा ही खड़ा रहा। उल्टे उस डीठ ने अपनी नाक सिकोड़ी। तब टैगा का स्वामी उसकी ओर लपका पर फिर भी वह अज्ञात श्रृंगी भागा नहीं बल्कि उल्टे उसने अपना सींगोंवाला सिर झुकाया और खुद दो कदम आगे बढ़ा। शायद वह अभी जवान, कुछ अधिक ही जोशीला हिरण था, उसे यह नहीं पता था कि 'सुरमई नयन' की टक्कर क्या होती है। माथे पर हड़ीले गुमड़ों की एक ही चोट से उसके घुटने मुड़ गये और ऐसे मामलों से सभी योद्धाओं की तरह 'सुरमई नयन' ने उसकी बगल में दिल के ऊपर वाले स्थान पर ऐसे जोर से प्रहार किया कि उसके हड़ीले गुमड़ों से हिरण की पसलियाँ टूट गयीं और उनके टुकड़े दिल में चुभ गये। सूरमा अब फिर कभी खड़ा न हो सका। तब 'सुरमई नयन' ने दूसरे की ओर नाक सिकोड़ी और

वह भाग खड़ा हुआ जीभ लपलपाकर वह तीसरे की ओर दौड़ा तब वह भी भाग खड़ा हुआ और उसके पीछे-पीछे सिवाय 'कलपीठू' के सब भाग पड़े। और जब 'सुरमई नयन' ने उसकी ओर नाक सिकोड़ी तो 'कलपीठू' ने उत्तर में खुद अपनी नाक सिकोड़ दी और हमला करने के लिए आगे बढ़ा।

टीले पर खड़े एकाकी पेड़ के पास कभी दूसरा पेड़ भी हुआ करता था पर अब उसका ठूँठ ही बचा था। इसी ठूँठ के पास दुश्मनों की टक्कर हुई, शायद वे दोनों ही अगली टाँगों को टिकाने के लिए उसका फायदा उठाने का इरादा रखते हों। दोनों ठूँठ से अड़ गये और एक दूसरे को माथे भिड़ाकर धकेलने लगे। वे बड़ी देर तक ठूँठ के इर्दगिर्द चक्कर काटते रहे पर कोई भी हावी न हो पाया, अब ठूँठ के चारों ओर खुरों से खुदा गड्ढा नज़र आने लगा था। अचानक एक नये प्रयास के समय ठूँठ उखड़ गया और टाँगों के नीचे से खिसककर दूर जा पड़ा। तब दोनों योद्धा एक दूसरे पर लुढ़क गये। उसी क्षण अचानक झाड़ी के पीछे से 'हुआ-लू' दौड़ती हुई निकली, वह 'छैले' से पिण्ड छुड़ाने के लिए दौड़ पड़ी और मैंने हिरणों का बिगुल बजा दिया। 'हुआ-लू' सीधी मेरी ओर दौड़ पड़ी और उसके पीछे-पीछे 'छैला' भी। योद्धाओं ने भी 'छैले' को देख लिया और वे भी दौड़ पड़े और उनके पीछे-पीछे सारे श्रृंगी भी। और हिरणों का पूरा का पूरा झुण्ड मेरे बिल्कुल पास से गुजर गया। जब तक वे अन्तरीप के सिरे तक दौड़ते पहुँचे मैं तब तक न केवल फाटक बन्द कर चुका था बल्कि मैंने उसके आसपास की बाड़ की जाँच

भी कर ली और कुछ कमजोर स्थानों को पुख्ता तक कर डाला।

मैं द्वन्द्व की समाप्ति के ठीक पहले ही ‘चीड़ चट्टानों’ पर पहुँचा और अब मैं न अपनी उपस्थिति से और न ही हवा में गोलियाँ चलाकर उन बढ़िया हिरणों को बचा सकता था। ‘सुरमई नयन’ और ‘कलपीठू’ ऊँचे कगार पर लड़ रहे थे, नीचे सागर तट की नुकीली चट्टानें थीं। अगर ‘सुरमई नयन’ के सींग होते तो बेशक द्वन्द्व कब का खत्म हो चुका होता। पर सींगों से वार झेलने की सम्भावना से वंचित सींगकटे ‘सुरमई नयन’ की अरक्षित गर्दन बुरी तरह घायल हो चुकी थी। और जब बहुत खून बह जाने के कारण वह अगली टाँगों पर गिरा तो उसके मुँह से खून की धारा बह रही थी। ‘कलपीठू’ ने उसकी बगल पर वार किया और अपने सींग से उसके दिल को बींध दिया, पर तभी अपने जीवन के अन्तिम क्षण में ‘सुरमई नयन’ को ऊपर से नीचे देखना नसीब हो गया, क्या पता वह चट्टानों के पास हमेशा बेचैनी से थपेड़े मारती समुद्री लहरों के सफ़ेद फेन को लाल होते भी देख सका हो। फिर ‘सुरमई नयन’ लड़खड़ाकर गिरा और उसने दम तोड़ दिया।

चट्टानों के बीच जहाँ-तहाँ टकराते सींगों की तड़-तड़, फूत्कारें और नीचे गिरते पत्थरों की खड़-खड़ सुनायी दे रही थी। और अब ये सभी हिरण मेरे थे।

16

तब से दस वर्ष बीत चुके थे जब मैंने पालतू ‘हुआ-लू’ की

सहायता से ढेरों श्रृंगी पकड़े और बड़े हिरण फार्म का निर्माण शुरू किया था। मेरा मीत नहीं आया और मैं अकेला निर्माण कर रहा था। एक साल और बीत गया। मैं अभी भी अकेला था और मुझे कोई चैन न था। एक साल और ऐसा होता है कि प्रतीक्षा में कोई अवधि बीत जाती है और प्रिय, कहीं दूर रहने वाले व्यक्ति की याद ऐसे आने लगती है मानो वह मर चुका हो। और अचानक जब आप और आपका मित्र पहचान से परे बदल चुके होते हैं, एक दूसरे से मिलना हो जाता है। कितना भयंकर लगता है यह! आपके चेहरे का रंग उड़ जाता है, सिहरकर आप समय की मार से तराशे नाक-नक्श को पहचानने की ऊहापोह में पड़ जाते हैं, और अन्ततः आप आवाज़ से उसे पहचान लेते हैं। धीरे-धीरे मित्र के साथ आपबीती को कुरेदते हुए आप क्रमशः अचेतन रुप से मानो किसी को क्षमा करने लगते हैं, मन बेहद हल्का होने लगता है: और अन्ततः मनोवांछित मिलन होता है: जीवन के लौटे उल्लास की धारा में डुबकी लगाकर दोनों मित्र एक दूसरे के लिए वैसे ही युवा हो जाते हैं जैसे पहले थे। इसी को मैं जीवन की जड़ जिन्सेंग का प्रभाव मानता हूँ। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवन की जड़ की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह प्रिय व्यक्ति जिसे आप सदा के लिए खो चुके होते हैं आपको किसी दूसरे में मिलता है और आप इस नये व्यक्ति से खोये मीत की तरह ही प्रेम करने लगते हैं। इसे भी मैं जीवन की जड़ जिन्सेंग का असर मानता हूँ। इस रहस्यमय जड़ के बारे में सभी अन्य धारणाओं को मैं या तो अन्धविश्वास मानता हूँ, या वे

उसके चिकित्साशास्त्रीय पक्ष से सम्बन्धित होती है। हाँ, तो साल के बाद साल बीतने के इस क्रम में जब मीत न आया तो मैं उसे भूलने लगा और अन्ततः बिल्कुल भूल गया कि टैगा में कहीं मेरी अपनी जीवन की जड़ उगती ही जा रही है। मेरे चारों ओर सब कुछ इतना बदल चुका था: ज़ुसुख़े के किनारे की बस्ती अब एक छोटा शहर बन चुकी थी और यहाँ तरह-तरह के ढेरों लोग जमा हो चुके थे। अपने ज़रूरी कामों से मैं अक्सर मास्को, टोकियो, शंघाई की यात्रा पर जाता रहता हूँ। टैगा की अपेक्षा इन बड़े शहरों की सड़कों पर मुझे अपने जिन्सेंग की अधिक याद आती है। नयी संस्कृति के सभी सेवकों के साथ मैं भी महसूस करता हूँ कि प्रकृति के टैगा से जीवन की जड़ हमारी सृजनात्मक प्रकृति में आ गयी और कला, विज्ञान व उपयोगी कार्यों के हमारे टैगा में जीवन की जड़ के खोजी, प्रकृति के टैगा में अवशिष्ट जड़ के खोजियों की अपेक्षा अपने लक्ष्य के काफ़ी निकट हैं।

काम में मैं रमा रहता हूँ और बेशक यह मुझे एकाकीपन के विषाद से बचाये रखता है। पर लो मेरे छड़ेपन की अवधि पूरी हो गयी। हमारी भेंट हुई और हम बड़ी देर तक एक दूसरे से सही बातें न कह पा रहे थे। यहीं वह पेड़ था जिस पर बैठी वह कभी जलसाहियों के कंकालों की सुन्दर पिटारियाँ जमा कर रही थी जिन्हें तूफ़ानों और लहरों ने इस पेड़ की डालों पर टाँग दिया था। अब ज़ुसुख़े ने इस पेड़ को बालू से इतना ढक दिया है कि बड़ी मुश्किल से उस स्थान को पहचाना जासकता है जहाँ पुष्प-मृग नारी रुप में मेरे समक्ष प्रकट हुआ था। यहाँ तट पर, महासागर

की श्वेत किनारी पर, जलसाहियों, सीपियों, तारामीनों के साथ मौन खड़े हम महाकाल की टिक-टिक सुनते अपने अल्पजीवन की घड़ियों को मिला रहे थे।

देखो पहाड़ भी कितनी जल्दी नष्ट हो जाते हैं! वहाँ चट्टान लटकी हुई थी, उसके नीचे से हिरण, काकड़, रैकून समुद्र तट की ओर, खारे पानी की ओर जाते थे और हम भी कभी हाथों में हाथ डालकर पशुओं के साथ एक ही पगडण्डी पर चले थे। अब तूफ़ान ने उस चट्टान को गिरा दिया था और पगडण्डी बिखरे पत्थरों के ढेर के किनारे-किनारे जाती थी। उस स्थान पर जहाँ लूवेन की कागजमढ़ी खिड़कियोंवाली फ़ान्ज़ा थी अब शोधशाला की चौड़ी-चौड़ी इटालियन खिड़कियोंवाली बड़ी इमारत खड़ी थी। विशाल हिरण फार्म में, जिसकी कई किलोमीटर लम्बी गेल्वानाइज्ड जाली की बाड़ ने सारी धुँधली पहाड़ी को घेर रखा था, अब पुराने हिरणों में से इक्के-दुक्के ही बचे थे, पर ‘हुआ-लू’ ज़िन्दा थी और पालतू जानवर की तरह सर्वत्र मुक्त रूप से घूमती थी।

हम विराट देवदार के नीचे लूवेन की क़ब्र पर गये। चीनियों ने पेड़ के तने को काटकर छोटा-सा देवालय बना दिया था जहाँ वे अपना पूजा-पाठ करते और काग़ज़ के दीप जलाते थे। बस यही अपने सबसे प्रिय व्यक्ति के जीवन का ब्योरा सुनाते समय मुझे अचानक जिन्सेंग की अपनी जड़ की याद आ गयी जो गाती घाटी के पास कहीं उग रही थी। अपना कौतूहल शान्त करने के लिए हम क्यों न चलें जिन्सेंग को देखने के वास्ते? और हम

दोनों एक ज़माने में खोजी जा चुकी जड़ को फिर से खोजने के लिए चल पड़े।

निःसन्देह, मैं लूवेन द्वारा छोड़े गये निशानों को कब का भूल चुका था, पर इतना पता था कि गाती घाटी का रास्ता सात चोटियों वाले खड्ड के तीसरे भालू कन्दर से होता हुआ जाता था। तो हमने खड्ड को पार किया और कन्दर के सहारे-सहारे ऊपर तक चढ़ गये। गाती घाटी में सब पहले जैसा ही था, वे ही विराट छितरे वृक्ष और चहचहाते पक्षी। पर जब हम प्राचीन सीढ़ीनुमा पाट से घने जंगल में उतरे जहाँ छायाप्रिय जड़ी-बूटियाँ होती हैं, मैं आगे का रास्ता भूल गया। हम बड़ी देर तक आगे-पीछे घूमते रहे, इस आशा से कि वह स्थान मिल जाये जहाँ मैं और लूवेन बड़ी देर तक मौन होकर बैठे रहे थे।

कितनी ही बार मुझे रात को विस्मृत स्थानों को ढूँढ़ना पड़ चुका है, और ढूँढ़ने का सबसे बेहतर तरीका है - अपने मन में कोई ऐसा सवाल ढूँढ़ता हूँ जो उस जमाने में मुझे सता रहा होता था, और अचानक खुमियों की खास तौर से तीखी महक को महसूस करके अन्दाज़ा लगाता हूँ कि यह सवाल इसी महक के वातावरण में मन आया था और वह स्थान जिसे ढूँढ़ रहा हूँ यहीं कहीं होना चाहिए, तब ध्यान से चारों ओर देखकर वह स्थान याद आ जाता है। अब की बार भी ऐसा ही हुआ, जब हम अन्ततः टटोलते-टटालते सही स्थान पर पहुँचे और हमारा शान्त वार्तालाप रुक गया, अचानक सोते की धारा से सुनायी दिया:

"बोल-बोल-बोल!"

और तब सभी संगीतकार, गाती घाटी के सभी प्राणी गाने-बजाने लगे और सम्पूर्ण सजीव नीरवता मुखरित होकर पुकारने लगी:

"बोल-बोल-बोल!"

इसके बाद जब मुझे जंगली सेब का वह तना दिखायी दे गया जिसके ऊपर से हम लूवेन के साथ धारा के उस पार गये थे मुझे एक-एक चीज़ याद आ गयी। उसी स्थान पर, जहाँ कभी हम घुटनों के बल बैठे थे, वह पूजा कर रहा था और मैं सोच रहा था, अब हम भी रुके और सावधानी के साथ छायाप्रिय घास को हाथों से हटाने लगे। हम इतनी रुचि और आकुलता के साथ यह काम कर रहे थे कि हमारे सम्बन्धों में कुछ मामूली-सा जो तनाव था वह बिल्कुल खत्म हो गया, हममें तेजी से घनिष्ठता आने लगी और अचानक हमें जिन्सेंग की जड़ दिखायी दी। फिर मैं बड़ी देर तक देवदार की छाल से पिटारी बनाने में लगा रहा, ठीक वैसी जैसी मैंने तब, बहुत पहले, मंचूरियनों के पास देखी थी, फिर हमने साथ मिलकर देवदार की छाल को लाइम वृक्ष के तन्तुओं से सिला। बड़ी सावधानी के साथ हम जड़ को खोद रहे थे ताकि उसे बिल्कुल भी क्षति न पहुँचे, वह उस जड़ से बहुत मिलती-जुलती थी जो तब मैंने मंचूरियनों के पास देखी थी: उसकी आकृति नंगे आदमी जैसी थी, हाथ भी थे और पाँव भी, हाथ पर उँगलियाँ-सी थीं, गर्दन भी, सिर भी और सिर पर चोटी भी। हमने पिटारी में मिट्टी बिछायी, वही जिसमें यह जड़

लगी थी और अत्यन्त सावधानी के साथ उसे पैक करके हम उस स्थान पर लौटे जहाँ कभी मैं और लूवेन सजीव नीरवता को सुनते हुए चुप बैठे अपनी-अपनी सोच में डूबे थे। अब हम इतना स्वाधीन मौन धारण किये देर तक नहीं बैठे रह सके, सोते की धारा ने शुरू कर दिया:

'बोल-बोल-बोल!"

गाती घाटी के संगीतकारों ने अपना संगीत शुरू कर दिया और हमने आपस में जी भरकर बातें कीं।

वैसे तो मैं नहीं बताना चाहता था पर अगर बात छेड़ी ही है तो आख़िर तक बता देनी चाहिए। यह वही औरत नहीं थी, पर मैं कहता हूँ न कि जीवन की जड़ की शक्ति ही ऐसी है कि उसमें मैंने अपने को पाया और दूसरी नारी से मुझे वैसे ही प्रेम हो गया जैसे अपनी तरुणाई की मनोवांछित युवती से। जी हाँ, मुझे लगता है कि जीवन की जड़ की सृजनात्मक शक्ति इसी में है कि मानव अहम से निकलकर किसी दूसरे में अपने को निखरता देखे।

अब मेरे पास मुझे निरन्तर आकर्षित करने वाला धंधा है जिसे मैंने स्वयं स्थापित किया और जिससे मैं महसूस करता हूँ मानो हम ज्ञान तथा प्रेम की अत्यन्त उग्र आधुनिक माँग से सज्जित होकर वन्य पशुओं को पालतू बनाने के उसी कार्य की ओर लौट रहे हैं जिसे हमारी सभ्यता के उषाकाल में हमारे पूर्वज करते थे। रोज मैं आधुनिक ज्ञान की पद्धतियों को आत्मीयता की उस

शक्ति से जोड़ने के अवसर खोजता हूँ जिसे मैंने लूवेन से लिया है। तो अब मेरे पास रोचक काम है। पत्नी में मुझे एक मित्र मिला और बच्चे मेरे प्यारे हैं। अगर लोगों को देखा जाये कि कैसे वे रहते हैं तो मैं अपने को पृथ्वी पर एक सबसे सुखी आदमी कह सकता हूँ। पर मैं फिर से कहता हूँ: अगर बात शुरू की ही है तो आखिर तक बतानी चाहिए! मेरे जीवन में एक मामूली-सी बात है, अगर निरपेक्ष रूप से देखा जाये तो मेरे जीवन के सामान्य क्रम पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, पर कभी-कभी मुझे लगता है कि यह मामूली-सी बात जीवन की सृष्टि का वैसा ही आदिबिन्दु है जैसे हिरणों के सींग बदलना। हर साल कोहरोंवाली उसी वसन्त ऋतु में जब हिरणों के पुराने मृत, अस्थिकृत सींग गिरते हैं तो मुझमें भी हिरणों की तरह कुछ नवीनीकरण-सा होता है। कई दिन तक मैं न प्रयोगशाला में काम कर पाता हूँ, न पुस्तकालय में। अपने सुखी परिवार में भी मुझे न चैन मिलता है न आराम। तीव्र पीड़ा और विषाद के साथ कोई अन्धी शक्ति मुझे घर से बाहर खदेड़ती है और मैं जंगल में, पहाड़ों में भटकता रहता हूँ और अन्ततः मैं ज़रूर उस चट्टान के पास पहुँच जाता हूँ जिसकी असंख्य अश्रु-ग्रंथियों जैसी दरारों से नमी रिस-रिसकर बड़ी-बड़ी बूँदों में जमा हो जाती है और लगता है कि यह चट्टान सदा रोती रहती है। यह आदमी नहीं - पत्थर है, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पत्थर में अनुभूति की क्षमता नहीं होती पर फिर भी मैं उससे अपना दिल ऐसे जोड़ देता हूँ कि मुझे भी कहीं से उसकी धड़कनें सुनायी देती हैं और तब मैं बीते

दिनों को याद करता हूँ और बिल्कुल वैसा ही हो जाता हूँ जैसा अपनी जवानी में था। अंगूर के तम्बू में मेरी आँखों के सामने ‘हुआ-लू’ अपना नन्हा-सा खुर घुसेड़ेगी। वे बीते दिन अपना सारा दर्द लाकर मुझे घेर लेते हैं और तब ऐसे मानो मुझे कुछ प्राप्त ही न हुआ हो, मैं अपने सच्चे दोस्त, पत्थर-दिल से मुख खोलकर कहता हूँः

"ओ, शिकारी-शिकारी तब तूने उसके खुर क्यों नहीं पकड़ लिये!"

ऐसा लगता है कि इन दर्द भरे दिनों में मैं अपने में से वह सब गिरा देता हूँ जो मैंने बनाया, उसी तरह जैसे हिरण अपने सींग गिरा देता है और फिर प्रयोगशाला में, अपने परिवार में लौट आता हूँ और फिर से काम शुरु कर देता हूँ तथा इस प्रकार अन्य अनाम और नामी सेवकों-साधकों के साथ पृथ्वी पर लोगों के नये, बेहतर जीवन के निरूपण की ब्रह्ममुहूर्त की वेला में प्रवेश करता हूँ।

1933

(अनुवाद: विनय शुक्ल)